कृतघ्न

कृतघ्न

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002
संस्करण • प्रथम, 2015
सर्वाधिकार • सुरक्षित
मूल्य • दो सौ रुपए
मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

KRITAGHNA *by* Dr. Ramesh Pokhariyal 'Nishank' Rs. 200.00
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com ISBN 978-93-5186-226-0

❖ एक ❖

सर्दियों की गुनगुनी सुबह।

ठिठुरन ऐसी कि रजाई से शरीर बाहर निकालने का मन ही न करे, लेकिन इस ठिठुरन के बावजूद उत्साही लोग घरों से बाहर निकल चुके थे। इनमें सभी उम्र के लोग थे—बच्चे भी, युवा भी और वृद्ध भी; युवा पार्कों में व्यायाम कर रहे थे तो उम्रदराज लोग टहल रहे थे। इन लोगों को देखकर तो यह महसूस ही न होता कि यह जनवरी का महीना है।

यों तो अंबुज की दिनचर्या भी यही थी। सुबह पाँच बजे बिस्तर छोड़ देता और आधे घंटे में तैयार होकर पार्क में पहुँच जाता। वहीं पर थोड़ा सा व्यायाम और जॉगिंग कर घर वापस आता। सर्दियों में तो जब वह घर से निकलता, तब अँधेरा ही रहता, लेकिन शरीर को स्वस्थ रखने में उसे सामान्यतया कोई आलस न था।

लेकिन आज सुबह के साढ़े छह बज चुके थे और अंबुज अभी तक नहीं उठा था, यहाँ तक कि उसकी नींद भी न टूटी थी। वर्षा ने धीरे से उसे हिलाया और चाय का कप बेडसाइड टेबल पर रख दिया। अंबुज अँगड़ाई लेता उठ बैठा। घड़ी की ओर नजर डाली।

'तुमने उठाया क्यों नहीं मुझे? कितनी देर हो गई है आज।'

'क्यों उठाती? कल रात दो तो बज ही गए थे तुम्हें सोते हुए। इतनी नींद भी तो जरूरी है, स्वस्थ रहने के लिए।' वर्षा ने मुसकराकर जवाब दिया।

'लेकिन तुम भी तो मेरे आने के बाद ही सोई हो। क्या तुम्हारी सेहत के लिए नींद जरूरी नहीं?' अंबुज ने नहले पर दहला मारा।

'मैं सारे दिन घर पर रहती हूँ। दिन में आराम कर सकती हूँ, लेकिन आप तो निकल जाएँगे अभी और फिर किस समय लौटेंगे पता नहीं।' कहते हुए उसने चाय की प्याली अंबुज के हाथ में दे दी।

अंबुज शहर के एक प्रतिष्ठित व्यवसायी रामनाथजी का इकलौता पुत्र और वर्षा उसकी पत्नी थी। घर में नौकर-चाकर होते हुए भी इतने वर्षों से वर्षा का नियम था कि अंबुज को सुबह की चाय वह अपने हाथों से ही देती। कितनी भी व्यस्तता क्यों न हो अंबुज की सुबह वर्षा से ही आरंभ होती। दिन भर तो अंबुज को अपने काम से फुरसत ही न मिलती। दिन का भोजन कभी ऑफिस में हो जाता तो कभी उसका भी समय न मिलता। हाँ, रात्रि भोजन पर वर्षा अंबुज की अवश्य प्रतीक्षा करती। अंबुज भी वर्षा का यह नियम जानता था, इसलिए जब भी देर होती, घर पर सूचित करना न भूलता।

'अखबार देना तो।' उसने पत्नी से कहा।

'पहले चाय पी लो। खबरें पढ़कर मूड मत खराब करो अपना।'

'जरा देखूँ तो सही, कल रात जिस वजह से मुझे देर हो गई थी, इसकी क्या कहानी बनाकर छापी है।'

'मुझे भी तो बताओ, कहाँ देर हुई थी तुम्हें? मुझे तो पता ही नहीं अब तक।' और वर्षा अखबार लाने चल दी।

अंबुज की दो बड़ी बहनें थीं, जो विवाहोपरांत अपने-अपने घरों में सुखी थीं। रामनाथजी के पिता, यानी अंबुज के दादा इस क्षेत्र के जमींदार थे। जमींदार क्या, छोटा-मोटा रजवाड़ा ही था उनका। आजादी मिली, रजवाड़े गए। उस वक्त के राजाओं ने भी जमींदारी छोड़ अन्य व्यवसाय अपना लिये। वैसे भी समय के अनुसार जो अपने आपको परिवर्तित न कर सके, वह कैसे सफल होता। रामनाथजी ने भी अपना व्यवसाय आरंभ किया। उस जमाने में आसपास के क्षेत्र में एंबेसडर गाड़ियों की

एकमात्र एजेंसी के मालिक थे रामनाथजी। धीरे-धीरे वे काम फैलाते गए और आज की तारीख में छोटी-बड़ी विभिन्न भारतीय व विदेशी गाड़ियों की एजेंसी उनके पास थी।

पत्नी के लाख मना करने के बावजूद रामनाथजी ने अंबुज को देश के प्रतिष्ठित बोर्डिंग स्कूल में प्रवेश दिलवा दिया और इस स्कूल में ही उसने देखीं अमीरों और गरीबों के बीच की लंबी तथा कभी न पाटी जानेवाली खाइयाँ तो स्कूल की फीस इतनी अधिक थी कि सामान्य परिवार के बच्चे तो वहाँ प्रवेश ही न पा सकते थे; लेकिन सामाजिक क्रियाकलापों के चलते स्कूल के बच्चों को कभी झुग्गी-झोंपड़ियों में ले जाया जाता तो कभी ये बच्चे उन गरीबों के बच्चों को पढ़ा आते। अंबुज इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता। इन बच्चों की स्थिति देख उसका मन व्यथित हो उठता। अकसर अंबुज लौटते वक्त इन गरीब बच्चों को अपनी कोई-न-कोई चीज दे आता।

'पिताजी, हम सबको भगवान् ने बनाया है न?'

छुट्टियों में घर आए अंबुज ने पिता से यह प्रश्न पूछा तो उन्होंने 'हाँ' में सिर हिलाया। दरअसल वे ही अंबुज को बताया करते थे कि इस सारे ब्रह्मांड को ईश्वर ने ही बनाया है।

'तो फिर कोई इतना गरीब और कोई इतना अमीर क्यों है?'

अंबुज के इस प्रश्न का पिता के पास कोई जवाब न था। लेकिन उसने पूछा था, अत: बाल मन की जिज्ञासा शांत करना तो आवश्यक ही था। इसलिए अमीरी-गरीबी को मेहनत से जोड़ दिया।

'बेटा, जो लोग बहुत मेहनत करते हैं, वे अमीर होते हैं और जो खाली बैठे रहते हैं, वे गरीब।'

'लेकिन पिताजी, वे लोग तो हमसे ज्यादा मेहनत करते हैं। पत्थर तोड़ते हैं, मजदूरी करते हैं, फिर भी गरीब क्यों हैं?'

रामनाथ बच्चे की बात सुनकर हैरान हुए। कितना गहरा सोचता है यह बच्चा! अब क्या जवाब दें इस बात का? ज्यादा गूढ़ जवाब भी बच्चे

के लिए ठीक नहीं था, सो बात टाल गए रामनाथजी।

गरीबी और अमीरी का यह फलसफा अंबुज के बालमन को समझ नहीं आया। वह हमेशा इस प्रश्न का जवाब जानने की कोशिश करता, लेकिन जवाब नहीं मिलता।

उसके बालमन में यह बात गहरी पैठ गई। वह जब कभी लाचार और गरीबों को देखता तो उसका मन द्रवित हो उठता। रामनाथ सोचते थे कि जैसे-जैसे बड़ा होगा वैसे-वैसे उसकी समझ भी बढ़ेगी और यह बात मन से निकल जाएगी। लेकिन यह सिर्फ उनकी सोच थी। अंबुज ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, गरीबी-अमीरी की खाई उसे और समझ में आने लगी। अब वह कभी-कभी अपना पूरा जेबखर्च लाचार और गरीब बच्चों पर खर्च कर आता।

रामनाथजी को बहुत आशाएँ थीं उससे। चाहते थे कि पढ़-लिखकर वह उनका व्यवसाय सँभाले और सिर्फ सँभाले ही नहीं, बल्कि उसे और बढ़ाए भी। लेकिन पुत्र की ये आदतें देखकर उन्हें अपने सपने धूमिल होते नजर आते।

रजवाड़े समाप्त होने के बाद कितनी मेहनत से अपने इस साम्राज्य को बचाए रखा है उन्होंने। वरना कई रजवाड़े तो अपनी आरामतलबी और नाकारापन के चलते धूल में मिल चुके थे। अपने परिश्रम और दूरदर्शिता के चलते उन्हें कभी कोई कमी महसूस न हुई, लेकिन अब उन्हें लग रहा था कि इस विचारधारा के चलते उसका पुत्र तो जमे-जमाए व्यवसाय को भी समाप्त कर देगा। अब रामनाथजी ने निर्णय ले लिया कि अंबुज को इस माहौल से दूर रखेंगे। उसके बारहवीं पास करते ही स्नातक की पढ़ाई के लिए उसे विदेश भेज दिया गया।

अंबुज समझ गया, वह बच्चा नहीं था अब। पिताजी उसे इस माहौल से दूर भेजना चाहते हैं और उनकी यह धरणा गलत भी नहीं थी। घोर पूँजीवादी पिता के पुत्र का समाजवाद की ओर आकर्षित होना किस पिता को अच्छा लगेगा और वह भी तब, जब पुत्र भी इकलौता हो। ऐसा नहीं

है कि रामनाथजी समाजसेवा का कार्य नहीं करते थे। नगर में स्थित कई धर्मार्थ संस्थाओं के अध्यक्ष थे वह। उनकी तरफ से विभिन्न आयोजनों के लिए भारी-भरकम दान दिया जाता था। लेकिन यह भी उनके व्यवसाय प्रबंधन का ही एक हिस्सा था। इसके चलते कई प्रभावशाली व्यक्तियों और राजनेताओं से उनकी मुलाकात हो जाती, तो वहीं उन्हें व्यापार करने का एक और स्रोत दिखाई देने लगता।

अंबुज को विदेश भेजने के पश्चात् रामनाथजी आश्वस्त थे कि अब उसकी सोच में बदलाव जरूर आ जाएगा। अमेरिका की चकाचौंध भरी जिंदगी में वह रम जाएगा, तो सबकुछ खुद ही समझ जाएगा। जब वापस लौटेगा तो अपना व्यवसाय खुद ही सँभाल लेगा।

❖ दो ❖

समय तेजी से गुजरता गया। इस बीच रामनाथजी ने अपनी दोनों बेटियों के विवाह कर दिए। बेटियों के विवाह भी उन्होंने अपनी हैसियत और रुतबे के अनुसार किए। अंबुज बीच-बीच में छुट्टियों में आता रहता, लेकिन अपने बचपन में वह पिता से जिन बातों पर बहुत सवाल-जवाब किया करता था, उस बात को लेकर उसने चुप्पी साध ली थी। समझता था कि पिता ने इन्हीं सबसे दूर करने के लिए उसे सात समंदर पार भेज दिया है।

पाँच वर्षों के बाद अमेरिका के एक प्रतिष्ठित संस्थान से एम.बी.ए. करने के पश्चात् अंबुज वापस लौटा। पिता जहाँ इस बात के लिए प्रसन्न थे कि पुत्र अब कंधे-से-कंधा मिलाकर उनके व्यवसाय में हाथ बँटाएगा, वहीं माँ इसलिए खुश थी कि उसका इकलौता बेटा उसकी आँखों के सामने रहेगा।

अंबुज को विदेश भेजने के निर्णय पर, पूर्व में भी उनकी पति से काफी बहस हुई थी।

'क्या भारत में अच्छे कॉलेज नहीं? और फिर कौन सा उसे नौकरी करनी है, अपना व्यवसाय ही तो सँभालना है।'

'जानकी भारत में अच्छे कॉलेज भी हैं और अंबुज को वहाँ दाखिला भी मिल जाएगा, लेकिन देख रहा हूँ कि उसका ध्यान पढ़ाई से अधिक

समाजसेवा में है। पहले अपनी पढ़ाई तो पूरी करे, फिर जो करना होगा कर लेगा। इसलिए उसे बाहर भेजना जरूरी है इस समय।'

जानकी के विरोध के स्वर घर की चारदीवारियों में घुटकर रह गए। उसे तो पुत्र के जाते समय रोने की भी इजाजत न मिली। उसके आँसू, उसका रूदन, सब उसके अंदर ही घुटकर रह गया। कभी-कभी इस दिखावे के बड़प्पन से जानकी को बहुत कोफ्त होती। क्या वह इनसान नहीं है? क्या बड़े होने का मतलब इनसानियत और भावनाओं से शून्य हो जाना है?

किसी तरह कलेजे पर पत्थर रखकर पाँच वर्ष व्यतीत कर दिए जानकी ने। जब-जब अंबुज छुट्टियों में वर्षभर में या फिर छह महीने पश्चात् घर आता, तो उसे देखकर जानकी को तसल्ली होती। इतनी लंबी प्रतीक्षा के बाद अब वह खुश थी। अंबुज भी पिता से अधिक माँ से जुड़ाव महसूस करता। अमेरिका से भी माँ से ही अकसर बात करता रहता। दोनों बेटियों के विवाह के बाद तो जानकी और भी अकेली हो गई। इतना बड़ा घर जैसे काट खाने को दौड़ता। पति अपने कारोबार में व्यस्त रहते और जानकी घर पर अकेली।

'मैं भी अंबुज को लेने दिल्ली तक चलूँगी।' जानकी ने पति से कहा तो वे सहर्ष तैयार हो गए।

यों तो दिल्ली से सूरजपुर चार घंटे का ही रास्ता था, लेकिन ये चार घंटे भी जानकी को भारी लगे। समय न बीतता तो वो अंबुज के बचपन से लेकर अब तक की बातें याद करने लगती।

दिल्ली पहुँचे तो एयरपोर्ट पर उससे भी लंबी प्रतीक्षा ने तो जानकी के सब्र का बाँध ही तोड़ दिया। बार-बार पति से अंबुज की फ्लाइट का समय पूछती। रामनाथ मुसकरा देते।

'क्यों इतनी उतावली हो रही हो, आ तो जाएगी फ्लाइट और फिर मैं भी कोई दुश्मन तो नहीं, बाप हूँ उसका। मुझे भी प्रतीक्षा है।'

'नौ महीने कोख में नहीं रखा था तुमने?' और जानकी की आँखें गीली हो आईं।

'ये अच्छा जुमला है तुम माँओं का। नौ महीने कोख में रखकर समझती हो कि बच्चे को तुमसे ज्यादा प्यार कोई कर ही नहीं सकता। पिता तो जैसे कुछ होते ही नहीं हैं।' पत्नी की उतावली समझ रामनाथ उसका मन बहलाने का प्रयास कर रहे थे।

और आखिर अंबुज की फ्लाइट आ ही गई। जानकी की निगाहें तो जैसे वहीं चिपककर रह गईं, जहाँ से यात्री बाहर आ रहे थे। अंबुज बाहर निकला तो उसकी निगाह भी माँ पर पड़ी। भाव विह्वल जानकी ने उसे पास आने पर सीने से लगा लिया।

रास्ते भर पिता-पुत्र और माँ बातें करते रहे, जो चार घंटे का रास्ता जाते समय जानकी को बहुत लंबा लगा था, उसका आते हुए पता भी न चला। अंबुज के घर पहुँचने की खुशी के सबके अपने-अपने कारण थे। रामनाथजी खुश थे कि उनके बूढ़े होते कंधे को सहारा मिल गया था, तो जानकी खुश थी कि उसका बेटा अब उसके पास रहेगा।

पंद्रह-बीस दिन अंबुज को व्यवस्थित होने में लग गए। पिता कुछ कहें इससे पहले ही उसने उनके साथ ऑफिस जाना आरंभ कर दिया। रामनाथजी प्रसन्न थे। जैसा वे चाहते थे, ठीक वैसा ही हो रहा था। अंबुज हर चीज को बहुत बारीकी से समझता, हिसाब-किताब से लेकर कर्मचारियों तक के बारे में वह हर जानकारी प्राप्त करता और उसे नोट भी कर लेता।

थोड़े ही समय में अंबुज ने पिता के व्यवसाय को अच्छी तरह देख-समझ लिया। पिता चाहते थे कि अंबुज अपनी मैनेजमेंट की पढ़ाई का उपयोग व्यवसाय को आगे बढ़ाने में करे और इसके लिए वे उससे शीघ्र ही बात करना चाहते थे। अंबुज के मन में क्या चल रहा है, यह जानने की इच्छा भी थी उनकी।

और एक रात भोजन के पश्चात् उन्होंने अंबुज के साथ बैठने का समय निकाल ही लिया।

'बेटा! क्या सोचा तुमने अब?'

'बहुत कुछ। बहुत सारी बातें हैं मन में। बहुत से प्लान हैं भविष्य के।'

अंबुज की आँखों की चमक देख रामनाथजी को अपना स्वप्न पूरा होता प्रतीत हुआ। वे समझ गए कि वक्त के थपेड़ों ने अंबुज के सिर के भूत को उतार फेंका है। इतने वर्षों के विदेश प्रवास ने उसे प्रगतिशील और व्यावहारिक बना दिया है, लेकिन जब उन्होंने अंबुज की बातें सुनीं, तो उन्हें लगा कि वे अंबुज को परखने में कहीं भूल कर गए। जवान होते बेटे का मन न पढ़ पाए रामनाथजी। अंबुज ने अपनी बात आरंभ की तो उनके पैरों तले जमीन ही खिसक गई।

'पिताजी, हमारा बिजनेस तो बहुत अच्छा चल रहा है और आगे भी प्रगति करेगा, लेकिन सामाजिक स्तर पर हम अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं करा पा रहे हैं।'

'लेकिन बेटा, मैं तो यहाँ कई सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं का अध्यक्ष, संरक्षक हूँ।'

'नहीं पिताजी, मेरा मतलब यह नहीं है।'

'तो फिर क्या मतलब है तुम्हारा, क्या चाहते हो तुम?'

'कुछ ठोस, जिससे कुछ वास्तविक, पीड़ित और कमजोर व्यक्ति का फायदा हो।'

'जैसे?' चौंक गए रामनाथजी।

'जैसे विधवा और बेसहारा महिलाओं के लिए आश्रम, अनाथ बच्चों के लिए शरणालय, गरीब और साधन हीन बच्चों के लिए स्तरीय स्कूल तथा ऐसे ही बहुत सारे काम।'

'ओह! तो समाजसेवा का भूत अभी उतरा नहीं है इसके दिमाग से।' रामनाथजी मन-ही-मन बड़बड़ाए और सोच में पड़ गए। वर्षों से बनाया उनका महल जैसे भरभराकर गिरने को हुआ। पिता के चेहरे का भाव अंबुज ने साफ-साफ पढ़ा।

'पिताजी, मैं अपने व्यवसाय पर इसका प्रभाव नहीं पड़ने दूँगा,

लेकिन आप ही सोचिए, मन को कितनी शांति मिलेगी। किसी जरूरतमंद की मदद करके।'

'लेकिन बेटा, धर्मार्थ कार्य तो हम करते रहते हैं। असहाय और गरीबों की मदद सिर्फ मैं ही नहीं, हमारे पुरखे भी करते आए हैं।' रामनाथजी ने तर्क दिया।

'मेरा यह मतलब नहीं है पिताजी, मैं चाहता हूँ कि समाजसेवा के क्षेत्र में हमारी प्रत्यक्ष भागीदारी हो।' अंबुज ने भी तर्क का जवाब तर्क से दिया। बेटे के आगे कुछ न बोल पाए रामनाथजी।

कुछ देर कमरे में खामोशी छाई रही। दोनों अपने-अपने विचारों में मग्न। रामनाथ जहाँ मन-ही-मन ढेर सारी गणनाएँ, हिसाब-किताब कर रहे थे, वहीं अंबुज अपनी सोच को कैसे मूर्त रूप दे, उसी बारे में विचार कर रहा था।

रामनाथजी का मन पीछे की ओर दौड़ता। एक समय पर उनके पूर्वज, इस पूरे क्षेत्र के राजा हुआ करते थे। समय बदला, परिस्थितियाँ बदलीं। रजवाड़े चले गए।

अपनी मेहनत के बल पर रामनाथजी, एक बार फिर सूरजपुर के अग्रणी व्यवसायी बने। मन में इच्छा थी अपने पूर्वजों वाले रूतबे को पाने की, राज करने की। एक-दो बार चुनाव लड़ने की भी सोची, लेकिन बाद में इरादा बदल दिया। अंबुज की अच्छी पढ़ाई करवाई, मन की दबी इच्छा को अंबुज के सहारे पूरा करना चाहते थे अब।

कम-से-कम सूरजपुर और उसके आसपास के औद्योगिक जगत पर तो राज करना ही चाहते थे रामनाथजी। लेकिन अंबुज ने तो दूसरी ही दिशा पकड़ ली। जब छोटा था तब तो उसे समझा सकते थे। अपने तरीके से मोड़ सकते थे, लेकिन अब तो अंबुज विदेश के प्रतिष्ठित संस्थान से एम.बी.ए. डिग्रीधारी युवक था। काम की भी कमी न थी उसे। बड़े-बड़े औद्योगिक घराने मोटी तनख्वाह पर उसे हाथोहाथ लेने को तैयार होते। अगर अब उन्होंने उसे अपने मन की करने से मना किया तो वह उनके

विरुद्ध भी हो सकता था। कहीं ऐसा न हो कि सबकुछ छोड़-छाड़कर नौकरी ही करना आरंभ कर दे। फिर क्या रह जाएगा उनके पास? एक ही तो बेटा है उनका और अंततः सबकुछ उसी का होना है। रामनाथजी मंथन करते रहे। अंत में उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि इस समय समर्पण कर देने में ही भलाई है।

'क्या सोचा पिताजी आपने?' अंबुज के प्रश्न ने रामनाथजी की तंद्रा तोड़ी। मन-ही-मन सारी लाभ-हानि की गणना कर चुके रामनाथजी ने बहुत ही शांत और गंभीर स्वर में अंबुज को अपना जवाब सुना दिया।

'बेटा, मैं अब बूढ़ा हो चला हूँ। तुम्हारी सोच भी नई और ऊर्जा भी नई है। अब इस व्यवसाय को तुम अपने ही तरीके से सँभालो तो अच्छा। जैसा तुम्हें ठीक लगे, वैसा करो।' बोलते हुए रामनाथजी के मन में क्या चल रहा था, यह अंबुज जैसा पढ़ा-लिखा लड़का भी समझ न पाया।

अनुभव ने आधुनिक पढ़ाई को मात दी। अंबुज को लगा कि पिता खुशी-खुशी व्यवसाय उसे सौंप रहे हैं। वह भी खुश हुआ। वर्षों से जिस काम को करने की अग्नि मन में सुलग रही थी, उसे अब ईंधन मिल गया था। वह भावुक हो उठा।

'पिताजी, ऐसा न कहें। आप तो हमेशा प्रेरणास्रोत बने रहेंगे और आपके अपार अनुभवों की मुझे सदा आवश्यकता पड़ेगी।' भावुकतावश उसने पिता के चरण छू लिये। रामनाथ ने उसे गले से लगा लिया।

रामनाथजी मन-ही-मन खुश हुए। उस दिन उन्हें एक नए सुख का आभास हुआ। अगर बेटे को मना कर देते तो, जो सुख उसे गले लगाकर मिला, वह कहाँ मिल पाता। उसकी आँखों से उभरने वाली चमक से उन्होंने अपनी आँखों को रोशन कर लिया। व्यवसाय में मिलने वाले लाभ के बजाए उन्हें ये लाभ ज्यादा अच्छा लगा। मन से एक बोझ भी उतर गया। उस रात अंबुज और रामनाथ दोनों चैन की नींद सोए।

पिता से अनुमति मिलते ही अंबुज ने अपने सपनों को पूरा करने की दिशा में आगे बढ़ना शुरू कर दिया।

पिता निश्चिंत थे कि पुत्र को दिशा मिल गई, लेकिन माँ निश्चिंत न थी। दरअसल माँ तो कभी निश्चिंत होना चाहती ही नहीं। माँ होती ही ऐसी है।

बेटा स्वदेश वापस आ गया। पिता का व्यवसाय भी सँभाल लिया। लेकिन अब अगली फिक्र उसके विवाह की थी। जवान होते बेटे के लिए वधू लाने का सपना उनकी आँखों में पल रहा था और इस सपने को वे शीघ्र ही साकार करना चाहती थीं और उन्होंने अंबुज से अपनी यह इच्छा जाहिर भी कर दी।

'माँ, सिर्फ दो वर्ष रुक जाओ। फिर जो तुम्हारा मन हो वह करना।'

बस माँ के लिए इतना ही काफी था। कुछ समय तो लड़की ढूँढ़ने में भी लग ही जाएगा। अगले वर्ष से ही लड़की की तलाश आरंभ कर देगी वह।

वैसे भी अंबुज अच्छे घर का शालीन, सुसंस्कृत और पढ़ा-लिखा लड़का है, उसके लिए रिश्तों की कमी न थी। लेकिन जैसा अंबुज का स्वभाव था, उसके लिए वैसी ही लड़की ढूँढ़ना आवश्यक था।

❖ तीन ❖

दो वर्ष का समय चुटकी बजाते बीत गया। इस बीच अंबुज अपने काम में व्यस्त रहा, तो जानकी उसके लिए योग्य बहू ढूँढ़ने में।

अंबुज ने अपनी ही बेकार पड़ी एक जमीन पर पीड़ित व बेसहारा महिलाओं के लिए एक आश्रम का निर्माण करवाया। उन्हें वहीं रोजगार मिल सके, इसका प्रबंध किया। उनके लिए वहीं सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, अचार, पापड़ इत्यादि बनाने के व्यवसाय हेतु प्रशिक्षण व कच्चा माल उपलब्ध कराने की व्यवस्था की। इसके साथ ही गरीब व बेसहारा बच्चों के लिए एक स्कूल का निर्माण करवाया। स्कूल में प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति की, ताकि वहाँ के बच्चे बाकी बच्चों से कहीं कमतर न रहें। अंबुज ने अपने इस प्रोजेक्ट में अपनी एम.बी.ए. की पढ़ाई का पूरा ज्ञान उड़ेल दिया था।

अंबुज व्यस्त था और काम की प्रगति से संतुष्ट भी। उसने इसके लिए दिन-रात एक कर दिया। न खाने की सुध, न सोने का समय और ऐसे में ठंडी फुहार बनकर उसके जीवन में आई, वर्षा।

पिछले एक-डेढ़ बरस से अपने सुयोग्य पुत्र के लिए बहू की तलाश करती जानकी की निगाह वर्षा पर आकर थम सी गई। उनकी अनुभवी निगाहों ने ताड़ लिया कि यही लड़की उसके पुत्र की जिंदगी को व्यवस्थित कर सकती है और उन्होंने रिश्ते की बात आगे बढ़ाई। वर्षा के

माता-पिता को भला इसमें क्या आपत्ति होती, सो रिश्ता तय हो गया। परिवार उनकी तरह पैसेवाला तो नहीं था, लेकिन सुसंस्कारित था। सबसे बड़ी बात यह थी कि वर्षा, जिसके साथ अंबुज और उसके परिवार को जिंदगी बितानी थी, वह जानकी को बहुत ही सुशील, मृदुभाषी और संस्कारित महसूस हुई और उनका अनुमान गलत भी न निकला।

'यथो नाम तथो गुण' की कहावत को चरितार्थ करती वर्षा, अंबुज के जीवन में भीषण गरमी में शीतल फुहार की तरह आई। वर्षा के आने से पहले-पहल तो अंबुज को बंधन सा लगा, उसे लगा उसके जीवन में माँ ने बलपूर्वक किसी का अनधिकृत प्रवेश करा दिया है। लेकिन कुछ ही दिनों में उसने महसूस किया कि वर्षा धीरे-धीरे उसकी ताकत बनती जा रही है। थोड़े ही समय में वर्षा सास-ससुर दोनों की लाड़ली बन गई।

अभी तक तो अंबुज काम में इतना व्यस्त था कि उसे घर आने का भी होश न रहता था, लेकिन वर्षा के आने के बाद उसे घर आने का बहाना मिल गया। वर्षा भी तब तक भोजन नहीं करती, जब तक वह घर नहीं पहुँच जाता। साथ ही वह उसके दिन भर के कार्यकलापों के बारे में पूछना भी न भूलती।

हँसते-खेलते समय बीत रहा था। अंबुज द्वारा स्थापित किए गए कार्य अब दिखने लगे। शहर और आसपास चल रही कई सामाजिक संस्थाओं में उसका दखल बढ़ा। दिखाने से ज्यादा धरातल पर काम करना उसे पसंद था। कई बच्चों को वह आश्रय दे चुका था और कई बेसहारा महिलाओं को स्वरोजगार से जोड़ चुका था। इस बीच वह स्वयं भी दो बेटियों का पिता बन गया। रामनाथजी बेटे की प्रगति से प्रसन्न थे। अब उनके मन का यह डर जाता रहा कि उनका बेटा व्यवसाय चौपट कर देगा। अंबुज भी हर छोटी-बड़ी बात पर पिता से राय-मशविरा जरूर लेता। माता-पिता के चित्त की खुशी के लिए कुछ करने की ललक भी उसके मन में थी।

'पिताजी, आपका मन था न चुनाव लड़ने का, तो अब लड़ लीजिए।

अब आपको गरीबों के वोट भी मिल जाएँगे।' एक दिन उसने पिता से कहा तो वे गंभीर हो उठे।

'कितना सच कह रहा है उनका बेटा। जिस वक्त उन्होंने चुनाव लड़ने की सोची थी, उस समय वे अपने पैसे के मद में चूर थे। पैसे के बल पर ही टिकट खरीदना चाहते थे और अहंकारी बन चुनाव लड़ना चाहते थे। साथ ही उन्हें अपने अमीर पैसे वाले दोस्तों पर विश्वास था कि वे उन्हें चुनाव जितवा देंगे, लेकिन कितने गलत थे वे। अच्छा हुआ तब उन्होंने यह गलती न की। वरना उनका अहम, उनकी शान और इज्जत दोनों को धूल में मिला देता।'

और अब तो उनके मन में यह इच्छा रही नहीं। अब तो वे बेटे की प्रगति, लोगों से मिलनेवाले स्नेह और गरीबों एवं जरूरतमंदों की दुआएँ पाकर ही इतना खुश थे कि किसी और खुशी के लिए उनके मन में स्थान ही न था। मन की संतुष्टि में भी चरम सीमा की सामाजिक सरोकारों से जुड़े रहने के कारण अंबुज को कई तरह के लोगों से जूझना पड़ता। कभी-कभी तो नौबत पुलिस केस तक भी आ जाती। ऐसा ही एक केस कल रात को हुआ था, जिसके कारण उसे देर हो गई थी और अब वह अखबार में उसके बारे में पढ़ना चाहता था। सच्चाई क्या थी, इससे तो बहुत अधिक वह भी वाकिफ न था, इसलिए देखना चाहता था कि अखबारों में क्या रंग दिखा है इस घटना को।

वर्षा ने अखबारों का पुलिंदा लाकर अंबुज के सामने रख दिया। अंबुज ने राष्ट्रीय समाचार-पत्र एक तरफ रख स्थानीय समाचार-पत्र उठा लिये।

'प्रेम में असफल युवती ने किया विषपान।'

'चाची की प्रताड़ना से दु:खी युवती ने जहर खाया।'

ऐसे ही शीर्षक अलग-अलग अखबारों में उसे नजर आए। आगे की कहानी पढ़ी। पढ़ना चाहता था कि किस तरह तोड़-मरोड़कर अखबारों की बिक्री बढ़ाने के लिए इस कहानी को बनाया गया होगा। बस सिर्फ

युवती का नाम जरूर बदल दिया गया था। चलो, कम-से-कम उत्साही पत्रकारों ने इस बात का तो ध्यान रखा।

अंबुज को ऐसे पत्रकारों से बहुत चिढ़ थी, जो किसी की व्यक्तिगत जिंदगी, आत्मसम्मान और व्यक्ति के भविष्य पर पड़नेवाले असर को ध्यान में न रख सिर्फ अपने अखबार की बिक्री बढ़ाने हेतु चटपटी खबरें छाप देते थे और साथ में उसमें झूठा-सच्चा, मिर्च-मसाला लगाने से भी न चूकते। खासकर लड़कियों और महिलाओं से जुड़ी ऐसी व्यक्तिगत खबरें उसे बहुत परेशान करती।

उसके आश्रम में तरह-तरह की परेशानियाँ तथा प्रताड़ना झेली हुई लड़कियाँ और महिलाएँ आती रहती थीं, जिनकी व्यक्तिगत जिंदगी का एक पहलू बहुत ही तकलीफदेह होता और वे भी न चाहतीं कि उनके इस पहलू को सार्वजनिक किया जाए। अंबुज उन्हें इस तरह के पत्रकारों से बचाने का हर-संभव प्रयास करता। वैसे शहर के प्रतिष्ठित पत्रकारों से उसके अच्छे संबंध थे। इस नेक कार्य में वे भी उसका साथ देते, लेकिन फिर पत्रकारिता को व्यवसाय बनानेवाले लोगों की भी कमी न थी।

उसे आज भी उस लड़की का चेहरा नहीं भूलता, जिसे इस पत्रकारिता के कारण ही अपनी जान गँवानी पड़ी थी। लगभग अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की वह किशोरी अपनी माँ से किसी बात पर नाराज होकर घर छोड़ आई और चली गई अपनी किसी मित्र के पास, जो दो-तीन लड़कियों के साथ किराए पर घर लेकर रहती थी। माता-पिता स्वयं ही उसे तलाशते रहे, लेकिन बदनामी के डर से पुलिस में रिपोर्ट न लिखाई।

चार-पाँच दिन तक सभी रिश्तेदारों, मिलनेवालों का घर खँगाल लिया, कुछ पता न चला। लगभग एक सप्ताह बाद पता चला भी तो, तब तक वह जेल पहुँच चुकी थी, देह व्यापार के जुर्म में। उन लड़कियों ने उसे एक आंटी से मिलवाया और आंटी ने अपने ग्राहकों से। वह छटपटाई, भागने की कोशिश की लेकिन सफल न रही।

उसकी किस्मत में ये गंदगी अधिक समय के लिए न लिखी थी, सो एक दिन पुलिस का छापा पड़ा और पकड़ी गई, प्रभावशालियों की जमानत हुई लेकिन उसकी सुननेवाला कौन था। शर्म के मारे वह अपने माता-पिता का नाम, पता भी न बता पाई।

और इस लड़की की आपबीती सुन, उसे शरण मिली अंबुज के महिला आश्रम में। वह वहाँ तो आ गई, लेकिन उसकी मानसिक स्थिति शोचनीय थी। रह-रहकर वह चीख उठती, कभी जोर-जोर से रोने लगती, ये देह व्यापार का नहीं बलात्कार का मामला था; जिसमें उसके तन के साथ-साथ उसकी आत्मा भी बुरी तरह घायल हुई और उन्हीं दिनों एक पत्रकार ने उसकी कहानी हू-ब-हू नाम सहित, फोटो सहित छाप दी। कहीं कुछ भी न बदला उसने। अखबार का टुकड़ा हाथ में ले माता-पिता पहुँचें, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी, न जाने कहाँ से उस हतभागी ने एक बोतल मिट्टी के तेल और माचिस का प्रबंध कर ही लिया और आग लगाने से पहले हाथ की नसों को इतनी बुरी तरह काट डाला कि बचने की कोई उम्मीद न बचे।

माँ-बाप आए तो बेटी की जली-सिकुड़ी देह सामने थी और साथ में थी एक चिट्ठी। 'अब तो सबको पता चल गया, क्या मुँह दिखाऊँगी मैं अपने माँ-बाप को और कैसे जिएँगे मेरे माँ-बाप इतनी बदनामी सहन कर, इससे अच्छा है, मैं ही मर जाऊँ।'

इसे आत्महत्या नहीं हत्या कहें तो ज्यादा ठीक होगा, इसके लिए कौन जिम्मेदार था। क्या वह लड़की जो अपनी नाराजगी में घर छोड़ आई थी? या वे माँ-बाप जिन्होंने इज्जत जाने के भय से पुलिस में रिपोर्ट तक न लिखवाई, या फिर उस लड़की की सहेलियाँ, जिन्होंने उसे आंटी के पास सौंप दिया? या फिर आंटी, जिसने उसका सबकुछ छीन लिया।

देखा जाए तो थोड़ी-थोड़ी जिम्मेदारी सबकी थी, लेकिन जो गलती हो चुकी थी, उसे सुधारा जा सकता था। माना कि घाव बहुत गहरा था, लेकिन समय का मलहम उसे न भर पाता, ऐसा भी नहीं था। धीरे-धीरे

बाकी लोग भी उसे भुला देते, लेकिन अखबार में छपी उस खबर ने उसके धैर्य का बाँध तोड़ दिया और चली गई वह उस दुनिया में, जहाँ न तो उसको पहचानने वाला कोई था और न ही प्रश्न करनेवाला।

अंबुज का मन उस पत्रकार को कभी माफ न कर पाया। ऐसा सत्य किस काम का, जो एक इनसान की जिंदगी छीन ले।

''सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयातं, न ब्रूयातं अप्रियम सत्यम।''

बरसों पहले भी हमारे पूर्वज इस श्लोक के माध्यम से ये बात समझा चुके हैं।

अंबुज की संस्था ने उस अखबार को कटघरे में खड़ा कर ही दम लिया, न्यायालय में वाद लड़ा और एक उदाहरण पेश किया, ताकि भविष्य में कोई सत्य के नाम पर किसी के जीवन से न खेल सके।

अंबुज ने आगे पढ़ना आरंभ किया। किसी अखबार ने उस लड़की को प्रेम में धोखा खाकर जहर खानेवाली युवती बताया, तो किसी ने उसकी चाची को डायन बता उसी की लानत-मलानत कर डाली थी। यों तो अंबुज को भी इस बारे में अधिक जानकारी न थी। बस, कल शाम जहर खाई ये लड़की जब अस्पताल में आई तो उस वक्त वह वहीं मौजूद था, अस्पताल के मुख्य चिकित्सा अधिकारी के कक्ष में वह किसी चर्चा में मशगूल था कि तभी पुलिस इंस्पेक्टर ने कक्ष में प्रवेश किया व चिकित्सा अधिकारी को इस घटना की जानकारी दी।

लड़की को उसके चाचा लेकर आए थे। लड़की बेहोश थी और पुलिस उसके होश में आने की प्रतीक्षा कर रही थी। चाचा के हावभाव से वह अत्यंत डरे हुए प्रतीत हो रहे थे, अंबुज के मन को कहीं अंदर से खटका सा हुआ।

रात को एक बार फिर अंबुज उस लड़की का हाल जानने अस्पताल गया, तो उसकी चाची भी वहाँ पर थी। लड़की अब होश में थी, लेकिन फिलहाल बात करने की स्थिति में नहीं थी। अस्पताल में मजमा लग चुका था, जितने मुँह उतनी बातें। लोग एक-दूसरे से जानना चाह रहे थे

कि आखिर माजरा है क्या? लड़की के चाचा एक ओर खामोश सिर झुकाए बैठे थे, तो चाची अब उसे एक पल भी अपने घर में नहीं रखना चाहती थी।

'ये कुलक्षिणी तो एक दिन हमें जेल ही करवा देगी। मेरे बच्चों को कौन पालेगा उसके बाद?' और वह छाती पीट-पीटकर रोने लगी।

पुलिस ने होश आने पर लड़की के बयान लेने चाहे, तो लड़की ने चुप्पी साध ली। बार-बार कुरेदने पर भी उसने किसी को दोष नहीं दिया। एक-दो बार यही दोहराया कि वह जीना नहीं चाहती।

अंबुज ने पुलिसवालों से प्रार्थना की कि वे एक-दो दिन बाद ही उससे सवाल-जवाब करें। तब तक उसकी मानसिक स्थिति भी थोड़ी ठीक हो जाएगी और वह आत्महत्या का कारण भी बता पाएगी।

पुलिस लौट गई। अंबुज ने डॉक्टरों से उसकी स्थिति के बारे में विमर्श किया। वह अब खतरे से बाहर थी, लेकिन अभी भीषण मानसिक तनाव में थी। अंबुज भी घर लौट आया। फिलहाल पूनम को अभी अस्पताल में ही रहना था।

❖ चार ❖

'पूनम' यही तो नाम था उस लड़की का। उम्र लगभग 18-20 वर्ष, रंग बहुत गोरा नहीं, लेकिन साँवला भी नहीं, तीखे नैन-नक्श, लंबी सुतवा नाक, हिरनी से चपल नैन। ऐसा लगता जैसे अभी बोल पड़ेंगे।

जहर के असर की लंबी बेहोशी ने उसके फूल से चेहरे को क्लांत और मलिन अवश्य कर दिया, लेकिन उस क्लांतता में भी चेहरे की मासूमियत ही उभर रही थी।

लेकिन जिस औदार्य से विधाता ने उसे रूप बख्शा, उतनी ही निर्ममता से उसके शेष सुख छीन लिये। माता-पिता की आँखों का तारा पूनम पाँच वर्ष की हुई ही थी कि एक सड़क हादसा दोनों की जिंदगी लील गया, जिस ऑटो रिक्शे के ट्रक से टकरा जाने पर ऑटो रिक्शा सहित ड्राइवर व दोनों सवारियों का कचूमर निकल गया था, उसी भीषण दुर्घटना के परिणाम को धता बताती पूनम झटके से ऑटो रिक्शा से बाहर आ गिरी थी, ऑटो रिक्शा के कबाड़ और पूनम के खरोंच रहित शरीर को देखकर, कोई अनुमान भी न लगा सकता कि ये लड़की इसी में बैठी थी।

संयुक्त परिवार, पिता और चाचा दोनों मिल पुश्तैनी दुकान सँभालते और साथ में रहती बूढ़ी दादी। दादा की मृत्यु हुए कई बरस हो चुके थे

और दादी भी बुढ़ापा नामक बीमारी से उपजी परेशानियों के चलते नित्य ईश्वर से अपनी मौत की दुआ माँगती।

मन में इच्छा रह गई थी तो बस एक छोटे पुत्र का विवाह, जो तीस बरस की उम्र होने तक कुँवारा ही बैठा था।

लेकिन अब पुत्र के विवाह से ज्यादा चिंता माता-पिता विहीन इस फूल सी बच्ची को पालने की थी।

'हे ईश्वर, कुछ वर्ष और दे दे, ये बच्ची थोड़ी सी बड़ी हो जाए बस, तब उठा लेना,' बारंबार अब मन-ही-मन यही प्रार्थना करती।

मानव मन भी विचित्र है। जानता है, जीवन-मरण उसके हाथ में नहीं। न तो मौत माँगे से मिलती है, न जिंदगी, फिर भी अपनी सुविधानुसार ईश्वर से कभी मौत तो कभी जिंदगी की कामना करता रहता है।

नन्ही पूनम को देख बेटे के विवाह का चाव भी फीका पड़ने लगा।

'नई बहू न जाने कैसा व्यवहार करेगी इस बच्ची के साथ।' यही विचार बार-बार मन में आता।

अतिशय लाड़-प्यार और माता-पिता विहीन पूनम से चाचा व दादी की सहानुभूति ने उसे एक हद तक जिद्दी बना दिया, जिस दुकान की कमाई से पहले पाँच आदमियों का परिवार पलता उसी में अब तीन लोग पल रहे थे और उसमें भी अधिकांश खर्चा पूनम पर ही होता।

बालमन कच्ची स्लेट के समान होता है, जिस पर पूर्व का लिखा आसानी से मिटाया जा सकता है, ऐसा ही हुआ पूनम के साथ। माता-पिता की मृत्यु का वह खौफनाक मंजर नन्ही पूनम धीरे-धीरे भूलती गई और कुछ याद रहा तो चाचा और दादी का प्यार।

सुबह सवेरे ही स्वच्छ इस्तरी किए हुए कपड़े, चमाचम चमकते पॉलिश किए हुए जूते और टाई लगाकर पूनम स्कूल जाती तो दादी सैकड़ों बलाएँ ले लेती।

'मेरी राजकुमारी, नजर न लगे इसे किसी की।' ऐसा ही तो उसकी

माँ भी बोलती थी।

'शहर में सबसे अच्छे स्कूल में पढ़ाएँगे हम अपनी बिटिया को, डॉक्टर बनेगी हमारी बेटी।' यही तो सपना था उसके माता-पिता का और इसी सपने को पूरा करने का प्रयास कर रहे थे अब उसकी दादी और चाचा।

लेकिन जिस कृपणता से ईश्वर ने उससे माता-पिता के प्यार का सुख छीन लिया था, तो क्या वह उसके माता-पिता के सपने को आसानी से पूरा होने देता।

दादी थी बूढ़ी, ऊपर से गठिया का रोग नाक में दम किए रहता, उम्र बढ़ने के साथ-साथ आँखों की रोशनी भी घटती जा रही थी। पूनम के कार्य तो चाचा ही करता, लेकिन दुकान की व्यस्तताओं के चलते घर के काम में माँ की मदद न कर पाता।

ऐसे में कभी दाल कच्ची रह जाती तो कभी रोटी, तो कभी सब्जी जल जाती।

'ये नहीं खाऊँगी, इसमें बदबू आती है।' पूनम रोटी का कोर मुँह से बाहर निकाल देती तो दादी और चाचा का कलेजा मुँह को आ जाता।

'अरे आग लगे मुझ निगोड़ी के हाथों को, एक नन्ही सी जान का पेट भी नहीं भर सकती। नरेन जा तो बाहर लच्छू हलवाई से कुछ ले आ इसके लिए।'

और इसके बाद चाचा की लाई हुई दूध-जलेबी पूनम दादी की गोद में बैठकर चाव से खाती।

'खा मेरी राजकुमारी ! ईश्वर तुझे ऐसी किस्मत दे कि सारी जिंदगी दूध-मलाई ही नसीब हो।' पूनम खाती तो दादी को लगता उसका पेट भर गया।

'राजकुमारी!' ये शब्द बचपन से ही पूनम के दिलो-दिमाग में रच बस गया।

'ये राजकुमारी कैसी होती है दादी?'

'राजकुमारी होती है, राजा-रानी की दुलारी, रहती है बड़े से महल में', ढेरों दासियाँ साथ में', 'हीरे-माणिक जड़े वस्त्र और आभूषण' अलग से और खाने को दूध-जलेबी!'

दादी की बात बीच में रोक पूनम जोर से खिलखिला उठी, 'तो क्या मैं भी ऐसी ही राजकुमारी हूँ?' पूनम की बड़ी-बड़ी आँखें और फैल उठीं।

'हाँ-हाँ, ऐसी ही राजकुमारी है तू।'

'तो फिर मेरा महल कहाँ है?'

'होगा बेटा, महल भी होगा तेरा। एक राजकुमार आएगा और तुझे महल में ले जाएगा।'

'अच्छा दादी!' और पूनम की आँखें आश्चर्य से और बड़ी हो उठतीं।

और यही सर्वशक्ति संपन्न राजकुमार नन्ही पूनम के अंतर्मन में उपजे सपनों में समा गया।

'लेकिन रोज दूध-जलेबी खाएगी तो बड़ी कैसे होगी, बड़े होने के लिए खाना खाना भी जरूरी है।' चाचा ने सपने में खलल डाला।

'अरे रोटी खाए भी तो कैसे बिचारी, बना भी कहाँ पाती हूँ मैं ढंग से।' दादी परेशान हो उठी,

'तो माँ खाना बनाने के लिए कोई महाराजिन रख लें क्या?' बेटे ने सुझाव दिया।

माँ ने सोचा बड़े बेटे के जाने के बाद से दुकान की बिक्री पर भी असर पड़ा है। आमदनी पहले से कम हो गई है। वस्तुत: सारे ग्राहकों पर उसी की पकड़ ज्यादा अच्छी थी, 'ये नरेन तो निरा बौड़म है, व्यापार करना भी नहीं जानता। ऐसे में महाराजिन का खर्चा अलग से, फिर बाहर का आदमी घर की तरह काम नहीं करेगा, फिजूल ही उड़ाएगा सारा सामान।' महाराजिन रखने का विचार उनके मन ने सिरे से नकार दिया।

तो फिर क्या हल निकले इस समस्या का? जीवन ऐसे ही चलता

रहा तो बाकी लोगों की तो समस्या नहीं, लेकिन ये फूल तो खिलने से पहले ही मुरझा जाएगा।

नरेन का विवाह! हाँ यही सबसे अच्छा विकल्प है इस समस्या के समाधान का।

'पूनम के साथ बहू के व्यवहार को वह भी देखती रहेगी, कोई अन्याय न होने देगी बिन माँ-बाप की इस बच्ची के साथ,' और यही सोचकर जुट गई बहू की तलाश में।

कुछ घरों के रिश्ते तो सिर्फ इसलिए ना हो गए कि नरेन के ऊपर बिन माँ-बाप की बच्ची की जिम्मेदारी थी, काफी खोजबीन के बाद आखिर एक गरीब घर की सुंदर, सुशील लड़की से नरेन का विवाह संपन्न हुआ।

गरीब घर की लड़की अधिक अपेक्षाएँ भी न होंगी और पूनम का लालन-पालन भी ढंग से कर पाएगी। पूनम की परवरिश के सामने सभी लालच नगण्य ही रहे।

सावित्री ने आते ही पूनम की जिम्मेदारी सहित पूरा घर सँभाल लिया। उसके सुघड़ हाथों की छाप पूरे घर में दिखाई देने लगी। सावित्री के भरोसे घर को छोड़ नरेन अपने घटते हुए व्यवसाय को सँभालने की कोशिश में लग गया। वहीं दूसरी ओर बूढ़ी माँ को भी शांति मिली। नन्ही पूनम को उसकी सारी शैतानियों के साथ जिस तरह से सावित्री ने अंगीकार किया, वह बूढ़ी दादी के कलेजे में ठंडक लाने का पर्याप्त कारण था।

गरीब घर की लड़की से बेटे का विवाह करवा देने के अपने निर्णय पर उसे बहुत संतोष हुआ।

'बड़े घर की होती तो दिखाती अपने नखरे और दहेज में लाए गए सामान की धौंस। ये अच्छी है, गऊ की माफिक, अब कोई चिंता ही नहीं। भगवान, अब तू उठा भी लेगा तो चैन से मरूँगी।' वृद्धा खुश थी। अपने हाथ-पैरों के चलते ईश्वर से अपने मरने की दुआ माँग रही थी,

लेकिन विधि का विधान क्या है वह समझ न पाई, जिस पूनम से विधाता ने इतनी क्रूरता से सबकुछ छीन लिया था। क्या वह उसके भविष्य के लिए फूल बो रहा था? क्या अभी जैसा दिख रहा था, वैसा ही सदा के लिए रहनेवाला था?

इन सब प्रश्नों के उत्तर से अनजान दादी अपने ही सपने बुन रही थी। जीते-जी जो सपने उसने पूनम के भविष्य को लेकर बुने थे, उन्हीं सपनों को चूर-चूर होते ऊपर कहीं बैठी देख पाती होगी, तो टूटते सपनों की किरचें मन को लहुलूहान करती होंगी।

नरेन और सावित्री के विवाह के बाद लगभग डेढ़ वर्ष तक जीवित रही दादी और एक दिन पूनम को नरेन और सावित्री के हवाले कर इस संसार से विदा ली। सावित्री उस वक्त माँ बननेवाली थी। बुढ़िया कुछ दिन और जीवित रह आनेवाले पोते या पोती का मुँह देखना चाहती थी, लेकिन जीवन की डोर अपने हाथ में कब रही है, जो अब रहती।

कुछ ही महीनों बाद सावित्री ने पुत्र को जन्म दिया तो घर एक बार फिर खुशियों से भर उठा। नन्हे से बच्चे को देख पूनम आरंभ में तो बहुत खुश हुई, पर जब चाचा-चाची का पूरा ध्यान उसी की ओर जाते देखा तो मन आहत हुआ। चाची को तो यूँ भी वह माँ कहकर पुकारती थी। उसी माँ का स्नेह बँटता देख पूनम विचलित हो उठी।

सावित्री बच्चे को गोद में ले बैठती तो पूनम को भी गोद में ही बैठना होता।

'देख तो बेटी, कितना छोटा है ये तुमसे। तुम तो बहुत बड़ी हो, चलो पलंग पर जाकर बैठो।'

'नहीं माँ, मैं भी तो छोटी हूँ अभी, मुझे तो गोदी में ही बैठना है।'

और पूनम की इसी तरह की जिद, जहाँ सावित्री के मन में रोष भरती गई, वहीं पूनम के जिद्दी स्वभाव को और अधिक बढ़ाती गई।

रिश्तों में दरार पड़नी आरंभ हो गई। दादी, माता-पिता की आँखों का तारा अब धीरे-धीरे सावित्री की आँखों में खटकने लगा। उसे याद आता

विवाह के ठीक बाद का अपना समय। उसे लगा ही नहीं कि वह इस घर में बहू बनकर आई है, वह तो सदा अपने आपको पूनम की माँ ही समझती रही। नई-नवेली ब्याहता के सपने माँ बनने की खुशी में समा गए थे और इस परिस्थिति से उसे कोई शिकायत भी न थी, लेकिन अब जब वह पूनम को इस नन्हे से बच्चे के प्रति असहिष्णु होते देखती, तो मन क्रोध से भर उठता।

'सिर्फ अपनी ही परवाह है इसे और किसी की तो चिंता ही नहीं।'

पहले बच्चे के बड़े हो जाने के बाद जब दूसरा बच्चा घर में आता है तो कई परिवारों को इस समस्या का सामना करना पड़ता है। बाल सुलभ ईर्ष्या तो सगे भाई-बहनों में भी होती है। अभी तक माता-पिता के प्यार का एकच्छत्र स्वामी उनका प्यार बँटते नहीं देख पाता, बहुत समझदारी से माता-पिता को इस समस्या का समाधान करना पड़ता है।

लेकिन यहाँ न तो सावित्री ने समझदारी दिखाई और नरेन को तो फुरसत ही नहीं थी। वह तो निश्चिंत था कि घर में सब ठीक ही चल रहा है।

'पूनम बहुत उद्दंड होती जा रही है आजकल।'

नरेन एक दिन जल्दी आ गया तो सावित्री ने मन की पीड़ा उड़ेल दी।

'क्यों, क्या कर दिया उसने?'

'बहुत जिद्दी हो गई है।'

'इसमें क्या गलत है? बच्ची है वह भी बिन माँ-बाप की, अम्मा ने बहुत प्यार दिया तो थोड़ी जिद्दी तो होगी ही,' नरेन ने बात को गंभीरता से नहीं लिया।

सावित्री कुढ़ गई, लेकिन बोली कुछ नहीं और अगले ही दिन कुछ ऐसा हो गया, जिसने आग में घी डालने का काम किया।

पूनम स्कूल से घर लौटी तो चेहरा आँसुओं से सराबोर था, नरेन को उस दिन घर में कोई काम पड़ गया तो दोपहर का भोजन करने वह भी

घर चला आया।

'क्या हो गया मेरी बिटिया को?'

'मैम ने कहा, तुम्हारी ड्रेस गंदी, जूते भी गंदे, नेल्स भी नहीं कटे हुए, अगर आगे से ऐसे स्कूल आई तो स्कूल से निकाल देंगे, डायरी में भी लिखकर दिया है।'

और सुबकती पूनम ने स्कूल डायरी नरेन के हाथों में पकड़ा दी।

'सावित्री तुम बच्ची को ढंग से तैयार तक नहीं कर सकती? हो क्या गया है तुम्हें? देखा, क्या लिखकर भेजा है इसकी क्लास टीचर ने?'

सावित्री रूआँसी हो उठी, जब से घर में एक नन्हे मेहमान ने कदम रखा, सावित्री उसमें अधिक व्यस्त हो गई, इसलिए कभी-कभी पूनम की ओर से लापरवाही हो ही जाती।

'छोटे का काम बहुत होता है इसलिए···।'

'क्या काम होता है ऐसा कि तुम पूनम के स्कूल के कपड़ों तक पर ध्यान नहीं दे पाती, अम्मा ने और मैंने कैसे पाला उसे, उससे कुछ सीखो, कभी कोई शिकायत न आने दी स्कूल से।'

सावित्री का मन हुआ कि कह दे जैसे पहले पूनम की तैयारी में अम्मा की मदद करते थे वैसे उसकी भी कर दिया करें, लेकिन कह न पाई, मन में ही घुटकर रह गई।

'आगे से ध्यान रखना और पूनम तुझे कोई परेशानी हो तो मुझे कहा कर, मैं हूँ न।' सावित्री को चेतावनी दे नरेन ने पूनम को आश्वासन भी दे डाला।

लेकिन नरेन की समझ में यह न आया कि पूनम के सामने ही ऐसी बात कर वह कहाँ गलती कर रहा है।

उसके इस कृत्य से जहाँ सावित्री को अपनी जमीन खिसकती महसूस हुई, वहीं पूनम का हौसला बढ़ा।

और फिर तो स्थितियाँ बिगड़ती ही गईं, विवाह के आरंभिक दिनों में सावित्री के मन में पूनम के प्रति उपजा सहानुभूतिजनित प्रेम कब

समाप्त होता गया, न तो नरेन इसे जान पाया न सावित्री। मन से सावित्री ऐसा चाहती हो ऐसा भी न था, लेकिन कुछ तो पूनम का जिद्दी स्वभाव और कुछ नरेन की असहिष्णुता दोनों ने मिलकर उसकी इस भावना को कुचलने का ही काम किया।

अब आए दिन स्कूल से पूनम के गृह कार्य, गंदे कपड़े, बिन पॉलिश के जूते आदि को लेकर शिकायतें आने लगीं, पूनम के स्वभाव को लेकर भी कई अभिभावक शिकायत कर चुके थे, साथ के बच्चों से मारपीट, उन्हें अपशब्द कहना, जैसी शिकायतें भी आने लगीं।

आरंभ में नरेन की डाँट को गंभीरता से सुनने वाली सावित्री अब धीरे-धीरे इसकी आदी हो गई।

'सुनो जी, पूनम की पढ़ाई को लेकर तो रोज ही कोई-न-कोई ड्रामा होने लगा है, कभी घर में दिया गया काम कर के नहीं ले जाती, तो कभी क्लास में पढ़ाई ढंग से नहीं करती। वैसे भी इन अंग्रेजी स्कूलों के नखरे बड़े हैं। क्यों न हम इसे किसी सरकारी स्कूल में डाल दें?' नरेन से अंतिम वाक्य कहते-कहते सावित्री का स्वर धीमा हो गया। वैसे नरेन को अच्छे मूड में देखकर ही उसने ये बात आरंभ की थी।

'क्यों? सरकारी स्कूल में क्यों? तुम क्यों नहीं पढ़ा देती उसे घर पर।'

'मैं!' सावित्री फिक्क से हँस दी, 'मुझे अंग्रेजी आती होती तो मैं ही न बोल लेती गिटर-पिटर और फिर मुझे घर के काम से फुरसत ही कहाँ।'

'तो ट्यूशन रख लेते हैं उसके लिए। वैसे भी भाई साहब, भाभीजी की बड़ी तमन्ना थी कि उनकी बेटी अच्छे स्कूल में पढ़कर डॉक्टर बने।'

'ट्यूशन! ये तो एक नए खर्चे की बात करने लगे, वैसे ही घर का खर्चा मुश्किल से चलता है, तो अब राजकुमारी के लिए ट्यूशन भी लगेगी।'

सावित्री ने मन-ही-मन सोचा, लेकिन अब इस नई समस्या का कुछ

तो हल निकालना होगा।

'क्या सरकारी स्कूलों में पढ़े बच्चे डॉक्टर नहीं बनते? वह हमारी बुआ की जिठानी का बेटा है न, बारहवीं तक गाँव के सरकारी स्कूल में पढ़ा और अब देखो कितना बड़ा डॉक्टर है और फिर वहाँ की पढ़ाई तो मैं भी करवा लूँगी, खर्चे की भी परेशानी रहती है।'

'हूँ' कहकर नरेन पलटकर सो गया।

तीर निशाने पर लगा तो है, सोचकर सावित्री प्रसन्न हुई।

और अंततः तंग आकर नरेन ने पूनम को पब्लिक स्कूल से निकालकर सरकारी स्कूल में दाखिला करवा ही दिया।

पूनम तो इस निर्णय से मानो आकाश से गिरी। कहाँ वह स्कूल और कहाँ यह। कहाँ तो स्कर्ट, टाई, चमचमाते जूतों में छोटी-छोटी कुरसी-मेजों पर बैठते बच्चे और कहाँ यह स्कूल, जहाँ स्कूल में झाड़ू भी बच्चों से लगवाते और बैठने को मिलती फटी टाट-पट्टी। कभी वह भी न नसीब होती तो नंगे फर्श पर ही बैठना पड़ता। पूनम का मन विद्रोह कर उठा।

'मैं नहीं जाऊँगी इस स्कूल में।' पहले दिन ही उसका ऐलान था।

'तो मत जा, घर में बैठ और घर के काम में मेरा हाथ बँटा।' सावित्री का दो टूक जवाब सुन पूनम सिहर उठी, चाची ने कहीं सचमुच ऐसा कर दिया तो?

चाचा से कहा, लेकिन उन्होंने भी उसे बहला दिया। पूनम समझ गई, अब इसी स्कूल जाना होगा। घर पर तो नहीं बैठ सकती। पूनम सरकारी स्कूल जाने लगी, लेकिन मन से हसरत न गई। अपनी सहेलियों को ठाठ से उसी स्कूल में जाते देखती तो मन में हूक सी उठती। कोई काँटा मन के किसी कोने में गहरा धँस गया, जो जरा सा छूने पर ही गहरा दर्द दे जाता।

दर्द गहराता तो चाची से पूछने का मन होता, 'क्यों उसके अरमानों का खून कर दिया? क्यों दादी और चाचा की इस राजकुमारी को दासी बना दिया।'

लेकिन जब अपना चाचा ही उसके पक्ष में न था तो किससे पूछती। इसी बीच चाची ने एक बेटी को जन्म दिया। दो छोटे-छोटे बच्चे, ऊपर से घर का काम सँभालना, चाची परेशान रहती और ऐसे में उसे एक सहारा नजर आता, 'पूनम'।

आए दिन स्कूल से छुट्टी कर पूनम घर पर अपने भाई-बहन को सँभाल रही होती, जिस दिन ये दोनों में से कोई भी बीमार पड़ता, उसी दिन पूनम को अपने स्कूल जाने का बलिदान देना होता।

इसी चिढ़ में पूनम बच्चों को रूला ही डालती।

'रो क्यों रहे हैं ये? क्या किया तूने।' चाची का खीझा स्वर सुनाई देता,

'मुझे क्या पता? मैंने तो कुछ न किया।' पूनम के चेहरे पर कुटिलता आ जाती।

'इतनी बड़ी हो गई, छोटे-छोटे बच्चों भी नहीं सँभाल सकती, खाने को सेर भर का और काम छटाँक भर का भी नहीं।'

'मुझे नहीं आता तो खुद क्यों नहीं सँभालती अपने बच्चों को।'

पूनम का ऐसा जवाब सावित्री के गुस्से में आग में घी का काम करता और फिर नौबत आती पूनम की पिटाई की।

पहली बार जब सावित्री ने पूनम पर हाथ छोड़ा तो सावित्री को स्वयं भी बुरा लगा। इसी पूनम को विवाह के बाद कितने प्यार से पाला था उसने, लेकिन अब इतनी कटुता क्यों आ रही है संबंधों में।

'मार लो, टुकड़े कर दो मेरे, लेकिन जो तुम कहोगी वह काम तो मैं करूँगी नहीं। बदला लूँगी तुमसे इस बात का, देख लेना एक दिन।' आँसुओं से भीगे चेहरे के साथ साक्षात् रणचंडी बनी पूनम के ये शब्द सुन सावित्री का पश्चात्ताप स्वत: पिघल जाता।

'मरने दो इस छोकरी को।'

और पहली बार संकोच खुलने भर की देर थी, यह तो फिर लगभग नित्य का ही काम हो गया।

पूनम कुछ-न-कुछ ऐसा अवश्य कर डालती कि सावित्री का क्रोध भड़क उठता और उसमें पानी पड़ता पूनम पर एक-दो हाथ जमाकर और उसके बाद भी बोलने से पीछे न रहती।

आरंभ में पूनम ने नरेन से शिकायत की, लेकिन बाद-बाद में उसे लगने लगा कि सावित्री द्वारा की गई शिकायत उसकी शिकायत पर भारी पड़ने लगी है, तो उसने चाचा से कहना ही छोड़ दिया। इसलिए या तो अब नरेन को घर में चल रहे ड्रामे का पता ही न चलता और अगर चलता भी तो सावित्री के पक्ष में, और धीरे-धीरे उसके मन में भी यह धारणा बनती जा रही थी कि पूनम उद्दंड हो रही है।

इन्हीं सब नाटक, नौटंकियों के बीच पूनम ने आठवीं की परीक्षा पास कर ली। घर में तो पढ़ाई का समय न मिलता, लेकिन प्रखर बुद्धि की होने के कारण स्कूल में जो भी पढ़ाया जाता उसे आत्मसात् कर लेती।

'बस बहुत हो ली अब पढ़ाई, इससे ज्यादा हिम्मत नहीं हमारे अंदर पढ़ाने की।' सावित्री ने हाथ खड़े कर दिए।

'लेकिन चाची!' 'माँ' का संबोधन कब चाची हो गया, इस पर न सावित्री ने ध्यान दिया न पूनम ने।

'लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, हमारा स्वयं का खर्चा ही बड़ी मुश्किल से चलता है, अब घर के काम में हाथ बँटाओ हमारा।'

'चाची वह तो सरकारी स्कूल है, लड़कियों को फीस नहीं देनी पड़ती वहाँ।' पूनम का चेहरा फक्क पड़ गया।। क्या भविष्य बनने जा रहा है उसका?

'आय हाय! कह तो ऐसे रही है जैसे पढ़ाई का खर्चा सिर्फ फीस ही होती है। किताबें, कपड़े और भी कई खर्चे होते हैं और हमसे नहीं होता अब ये।'

'चाची, मुझे तो पढ़ना है, कैसे भी।'

'बोल तो ऐसे रही है जैसे बाप जायदाद छोड़ गया हो कोई, खुद तो

चले गए और छोड़ गए इस तीखी मिरची को हमारे लिए।'

'मेरे पिताजी को बीच में मत लाओ।'

और अंततः यह बहस समाप्त हुई। पूनम के गाल पर पड़े तमाचे के साथ। पूनम पहले से ही जानती थी कि ऐसा ही होगा, इसकी तो आदी हो चुकी थी वह, लेकिन उसी शाम को जो कुछ हुआ, उसकी तो उसे स्वप्न में भी कल्पना न थी।

'मैं इस लड़की के साथ इस घर में बिलकुल नहीं रह सकती अब।'

नरेन समझ गया आज फिर दोनों के बीच कोई झगड़ा हुआ है। सावित्री से कई बार सुन चुका था कि पूनम जिद्दी हो रही है, लेकिन घर में कलह न हो इसलिए चुप रह जाता। वैसे भी व्यापार की परेशानियों ने उसका पीछा न छोड़ा था।

'मेरा तो कोई नहीं इस घर में। दोनों बच्चों को लेकर मायके चली जाऊँगी, तब रहना चाचा-भतीजी दोनों चैन से।' जब भी पूनम और सावित्री में कोई बहस होती, ये वेदवाक्य सावित्री के मुखारबिंदु से अवश्य प्रस्फुटित होते।

उस दिन भी जब वह यही कहने लगी, तो नरेन खीझ गया।

'अब आज क्या हो गया?'

'अरे यह पूछो क्या नहीं हुआ? जुबान लड़ाती है मुझसे। तुम तो बस कोई लड़का देख इसकी शादी करवा दो। घर से जाएगी, तभी शांति मिलेगी मेरे मन को।' सावित्री लगभग रोनेवाले अंदाज में बोली।

'शादी! लेकिन अभी तो वह पंद्रह वर्ष की ही है सिर्फ' नरेन आश्चर्यचकित था। पूनम और सावित्री में नहीं बनती थी, लेकिन अब तो सावित्री ज्यादती कर रही थी।

'अरे हाँ छोटी है? देखो तो कैसी हो गई है। बन-ठन देखो तो ऐसी लगती है जैसे महारानी हो कहीं की। मैं तो कहती हूँ ब्याह करो इसका, नहीं तो लक्षण ऐसे हैं कि नाक कटाएगी हम सबकी।' यह कहते-कहते सावित्री उग्र हो उठी।

सावित्री ने पूनम का एक और पक्ष सामने रख दिया, नरेन ने तो कभी इस ओर ध्यान ही न दिया। निम्न मध्यमवर्गी परिवार, जिसमें बढ़ती उम्र की लड़कियों का ज्यादा सजना-सँवरना भी बुरा ही माना जाता और फिर यह तो पूनम थी, बिन माँ-बाप की उद्‌दंड और जिद्‌दी लड़की।

लेकिन सावित्री ने सब झूठ बोला हो, ऐसा भी नहीं था। पूनम को अच्छे कपड़े पहनने, अच्छी तरह से तैयार होने का बहुत शौक था। ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गई, त्यों-त्यों यह शौक भी बढ़ता गया। कपड़े तो अधिक न थे उसके पास, लेकिन जितने भी थे उन्हें धोने के पश्चात् तह बनाकर साफ-सुथरा रखती। चाची प्रेस न करने देती तो वह कपड़ों को तह बनाकर सिरहाने के नीचे रख देती। कभी चोरी से चाची का क्रीम-पाउडर भी इस्तेमाल कर लेती।

पूनम के मन को समझ पाना भी कुछ आसान न था। चाचा की बहुत अधिक आमदनी तो थी नहीं। छोटी सी दुकान, उससे घर का खर्च ही चल पाता। उनके दोनों बच्चे भी अब पढ़ने वाले थे, तो उनका ही खर्चा बहुत था। पूनम चाचा के बच्चों को सूट-बूट, टाई पहने स्कूल जाते देखती तो कुढ़ उठती। उसे क्यों निकाल दिया इस अच्छे स्कूल से? मन-ही-मन सोचती। अमीर परिवारों के बच्चों को देखती तो मन की महत्त्वाकांक्षा का मृग कुलाँचे भरने लगता। काश! वह भी ऐसे ही किसी घर में पैदा होती, तो राजकुमारी बनकर रहती ओर खूब पढ़ती। पढ़-लिखकर बहुत बड़ी बनती। लेकिन यह नहीं हो पाया। उसके मन की यह कुंठा चाची के साथ झगड़े में बाहर आ ही जाती। चाची का क्रीम-पाउडर चुराकर लगाने में कई बार तो वह पिट भी चुकी थी, लेकिन इसके बाद भी मन की इच्छाएँ कम न होतीं।

रात को चाची रसोई में थी तो चाचा को अकेले देखकर वह उनके पास जा बैठी।

'चाचा मैं आगे पढ़ना चाहती हूँ, मुझे स्कूल जाने दो।' और उसके

आँसू निकल आए।

चाचा ने पहली बार ध्यान से उसकी ओर देखा। पत्नी द्वारा कही गई बात को अपनी आँखों से देखना चाहता था। सलीके से पहने गए कपड़े, करीने से सजे बाल और आँखों से बहे आँसुओं के गालों तक चले आने पर पाउडर धुलने के कारण बनी लंबी सी लकीर।

'पूनम सचमुच फैशन करने लगी है। सावित्री ठीक ही कह रही थी।' मन-ही-मन सोचा नरेन ने, लेकिन अगले ही पल उसके आँसू देख बिन माँ-बाप की बच्ची के प्रति उसके मन में दया उमड़ आई। वैसे भी पढ़ना ही तो चाहती है वह, कोई अनुचित माँग तो कर नहीं रही।

'मैं तेरी चाची से बात करूँगा।' उसके सिर पर हाथ फेर चाचा बाहर निकल आए।

पूनम समझ गई कि उसका कुछ नहीं होने वाला। चाची का जवाब उसे मालूम था और चाचा अपनी बात मनवाने की कितनी हिम्मत रखते हैं, यह भी उसे मालूम था। वह सिर पकड़ कर बैठ गई।

चाचा रसोई में आ गए। एक नजर सावित्री पर डाली। वह काफी गंभीर दिख रही थी। किसी तरह हिम्मत जुटाकर पूनम की पढ़ाई वाली बात कर ही डाली।

'पूनम आगे पढ़ना चाहती है, तुमसे भी बात की होगी उसने?'

'हाँ की थी, लेकिन मैंने ना कर दी। घर की परिस्थिति ऐसी नहीं। वैसे भी बड़ी मुश्किल से पास हो रही है, स्कूल जाकर क्या कर लेगी, प्राइवेट कर लेगी आगे की पढ़ाई।'

'पूनम, ठीक ही तो कह रही है तुम्हारी चाची, आगे की पढ़ाई तुम प्राइवेट भी तो कर सकती हो।' यह कहते वक्त नरेन यह भूल गया कि उसके भैया-भाभी अपनी इस बेटी को डॉक्टर बनाना चाहते थे और स्कूल गए बिना ऐसा होना संभव नहीं था।

और इसके बाद जो हुआ वह अप्रत्याशित था, नरेन ने कभी सोचा भी न था कि ऐसा भी हो सकता है।

'जोरू का गुलाम।' घोर हताशा और उससे अधिक क्रोध का परिणाम था पूनम के मुख से निकले ये शब्द।

और इस क्रिया की प्रतिक्रिया थी, पूनम के गाल पर नरेन के हाथों की भरपूर छाप।

और उस रात घर में बच्चों के अलावा किसी के मुँह में अन्न का दाना न गया, नरेन के मन में भी सावित्री की तरह यह धारणा बन गई कि पूनम बहुत अधिक उद्दंड हो गई है।

❖ पाँच ❖

नरेन और उसका परिवार जहाँ रहते वह उनका पुश्तैनी घर था। कुल मिलाकर तीन कमरे, छोटी सी रसोई और आँगन। एक कमरे में पाँच-छह कुरसियाँ, मेज और एक दीवान डालकर उसे बैठक का रूप दे दिया गया था। एक कमरा सावित्री और उसके पति का था, तो तीसरा कमरा, जो पहले दादी और पूनम का हुआ करता था, अब पूनम और बच्चों के काम आता। घर में कोई मेहमान आ जाए तो ये कमरा पूनम से छिन जाता। उसी कमरे में घर का ढेर सारा सामान भी पड़ा था।

इस पुश्तैनी घर के अलावा एक छोटी सी दुकान थी, जिसे पहले पूनम के परदादा चलाया करते, फिर उसके दादा और बाद में यही दुकान पूनम के पिता व फिर चाचा के पास आई थी। सौभाग्य से पूनम के परदादा व दादा अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र थे, तो दुकान व घर बँटने की नौबत अब तक न आई।

‘क्यों न हम एक कमरा किराए पर दे दें।’ सावित्री ने एक रोज नरेन से कहा तो उसकी समझ में न आया।

‘कमरे हैं ही कहाँ जो किराए पर दें?’

‘पूनम वाला कमरा। उसका दरवाजा भी बाहर की ओर खुलता है।’

‘लेकिन हमारा सामान? और पूनम कहाँ जाएगी?’ प्रश्न किया नरेन ने।

'अरे जाएगी कहाँ? जब तक यहाँ है, यहीं रहेगी। और कौन सी जगह की कमी है यहाँ पर। कुछ सामान हम अपने कमरे में रख लेंगे। जहाँ तक पूनम के सोने की बात है तो वह बैठक के तख्त में सो जाया करेगी।'

'लेकिन एक कमरा लेगा कौन?'

'अरे, क्यों नहीं लेंगे? कोई विद्यार्थी ढूँढ़ लेंगे, उसे तो खाना पकाना नहीं होता और ज्यादा सामान भी नहीं होगा। हम अपना सामान भी वहीं रख पाएँगे।' सावित्री ने युक्ति सुझाई।

'लेकिन…?' नरेन के मन में तब भी संशय था।

'अब ये लेकिन-वेकिन छोड़ो। कल से ही किराएदार ढूँढ़ना शुरू करो। दो पैसे आएँगे तो घर के ही काम आएँगे। कल इसकी शादी भी तो हमें ही करानी है।' सावित्री ने जैसे विषय को समाप्त करते हुए कहा, तो नरेन भी मौन रह गया।

दो महीनों बाद ही उस कमरे में किराएदार आ गया। शहर के एक फार्मेसी कॉलेज में पिछले वर्ष ही प्रवेश लिया था उसने। एक वर्ष छात्रावास में रहा, लेकिन वहाँ का न तो माहौल पसंद आया, न खाना। एक दोस्त ने इस घर के बारे में बताया, तो पता करते-करते वह यहाँ पहुँच गया और पसंद आने पर कमरा किराए पर ले लिया।

राघवेंद्र नाम था उसका। तराई के जमींदार खानदान का इकलौता बेटा। फार्मेसी का द्वितीय वर्ष का छात्र, सुविधा संपन्न घर में रहने के बाद कॉलेज का मामूली सा छात्रावास कहाँ पसंद आता, इसलिए किराए के घर की राह पकड़ी। फार्मेसी की डिग्री में अच्छे नंबर लाकर इसी में भविष्य बनाना चाहता था, आगे की पढ़ाई करनी थी। उसके लिए डिग्री में अच्छे नंबर लाना जरूरी था। घर की आर्थिक स्थिति इतनी सुदृढ़ थी कि नौकरी करने की जल्दी नहीं थी उसे।

किराएदार के आने से आरंभ में तो पूनम को काफी परेशानी हुई, उसे अब बैठक वाले कमरे के तख्त पर ही सोना पड़ता। उस कमरे में

वह स्वयं को स्वतंत्र महसूस नहीं करती, लेकिन क्या करती। धीरे-धीरे बदली हुई परिस्थितियों में अपने आपको ढालने की कोशिश की। चाचा के साथ बदतमीजी कर अब वह उनका प्यार और सहानुभूति भी खो चुकी थी।

राघवेंद्र एक होटल में जाकर भोजन करता रहा, लेकिन बाद में सावित्री के आग्रह के चलते वहीं भोजन करने लगा, यानी वह पेइंग गेस्ट बन गया था। इससे सावित्री को भी अतिरिक्त आय होने लगी।

पूनम अब सत्रह वर्ष की हो चुकी थी और चाची जोर-शोर से उसके लिए रिश्ता ढूँढ़ रही थी। इस सबमें पढ़ाई का मुद्दा तो न जाने कहाँ दब चुका था। लेकिन अच्छे रिश्ते के लिए अच्छी शादी भी करनी पड़ती और खर्च भी अधिक होता। सावित्री तो किसी तरह पूनम नाम की इस बला को टालना चाहती थी। वह भी बिना किसी खर्चे के।

'चाची, मैं अभी शादी नहीं करना चाहती।' एक दिन उसने चाचा और चाची को रिश्ते की बात करते सुना तो कहा।

'तो क्या करेगी तू?' चाची ने मानो खा जानेवाली नजरों से उसको घूरा।

'क्यों पढ़-लिखकर कहीं की महारानी बनना है क्या?' चाची ने फिर पूछा।

'महारानी तो नहीं बनना चाहती, लेकिन अपने पैरों पर जरूर खड़ा होना चाहती हूँ।' कहना तो यही चाहती थी पूनम, लेकिन कह न पाई।

दादी की राजकुमारी तो न जाने कहाँ खो गई थी, रह गई थी तो एक बिगड़ी हुई लड़की पूनम, जिससे उसके सगे किसी तरह छुटकारा पाना चाहते थे।

हकीकत तो यही थी। लेकिन सपने अभी पूरी तरह टूटे न थे, डॉक्टर बनने का सपना तो अब पूरा होना संभव न था, लेकिन सपनों का राजकुमार अभी भी कभी-कभी सपनों में आकर उसे अपने महल में ले जाता।

सायं को राघवेंद्र को खाने की थाली देने सावित्री कभी–कभी पूनम को ही भेज देती। जब भी वह खाना देने जाती तो उसे हमेशा पुस्तकों में डूबा पाती। उसे पढ़ते देख उसकी इच्छा बलवती हो उठती। अब तो घर के कामों में लगे रहना ही उसकी नियति थी, लेकिन आकांक्षाओं ने अभी दम नहीं तोड़ा था।

'आप कौन सी किताबें पढ़ते हैं?' एक दिन हिम्मत कर पूनम ने राघवेंद्र से पूछ ही लिया।

'फार्मेसी की।' किताबों में आँखें गड़ाए ही जवाब दिया राघवेंद्र ने।

पूनम की समझ में कुछ न आया। राघवेंद्र की बेरूखी उसे बुरी भी लगी। क्या फर्क पड़ता उसे अगर थोड़ी सी बात कर लेता तो।

दो–तीन दिनों तक वह भी खाना उसके सामने लगभग पटककर चली आई। राघवेंद्र को भी उसके व्यवहार का रूखापन नजर आया, लेकिन न तो वह इसका कारण जानना चाहता था, न उसे इससे कोई फर्क पड़ता।

कुछ दिन यूँ ही गुजर गए। अभिमानी पूनम भी झुकने को तैयार न थी।

अब राघवेंद्र ने ही बात प्रारंभ की।

'आप कौन सी क्लास में पढ़ती हैं?' राघवेंद्र को कुछ और पूछने को न मिला तो बात आरंभ करने के लिए यही प्रश्न पूछ लिया।

'मैं पढ़ती नहीं।'

'मतलब?'

'मेरी पढ़ाई छूट गई।'

'कितना पढ़ी हो?'

'आठवीं। आठवीं किए भी कई वर्ष हो गए।'

'क्यों, आगे पढ़ाई क्यों नहीं की?'

'चाची ने पढ़ने नहीं दिया। लेकिन मुझे पढ़ना बहुत अच्छा लगता है।'

'तो तुम दसवीं का इम्तिहान ओपन बोर्ड से क्यों नहीं देती?'

'यह क्या होता है?'

और तभी चाची ने तेज स्वर में पूनम को आवाज दी तो वह भागती चली गई।

पहली बार पूनम और राघवेंद्र में थोड़ी सी बात हुई और वह भी ऐसी, जिसने आगे बातचीत का रास्ता खोल दिया।

पूनम अब अगली रात्रि की प्रतीक्षा कर रही थी। वह सारा दिन उसे बहुत बड़ा लगा। बार-बार घड़ी की ओर नजर जाती। घड़ी की सुइयाँ थीं कि खिसक ही नहीं रही थीं। सुई की गति भी उसे आज मंथर लगी। सूरज मानो ढल ही नहीं रहा था आज।

शाम हुई, रात भी हो गई, लेकिन चाची आज खाना बनाने में इतनी देर क्यों कर रही थी। समय के साथ-साथ पूनम की बेचैनी लगातार बढ़ती जा रही थी। काफी देर बाद चाची रसोई में गई तो पूनम भी साथ में चल दी।

चाची ने सब्जी काटने के लिए उसके सामने रख दी और स्वयं बाहर चली गई। जब तक वह वापस लौटी तक तक पूनम सब्जी काट कर आटा भी गूँध चुकी थी।

'आज तो बहुत फुरती से काम कर रही है। क्या बात है? तुझ जैसी कामचोर पर यह किसका असर हो गया आज?' चाची ने व्यंग्य बाण छोड़ा।

और दिन की बात होती तो पूनम कोई चुभता सा जवाब जरूर देती, लेकिन आज मुसकराकर चुप रह गई।

चाची को कोई शक न हो इसलिए राघवेंद्र को खाना देने के लिए पूनम ने स्वयं न कहा।

'उसको खाना क्यों नहीं देकर आती। जब तक कहो नहीं तब तक कोई काम नहीं होता कुलक्षिणी से।' चाची चिल्लाई तो पूनम थाली उठा राघवेंद्र के कमरे की ओर चल दी।

'ये ओपन बोर्ड क्या होता है और कैसे मैं दसवीं का इम्तिहान दे सकती हूँ?' खाने की थाली रखते ही उसने राघवेंद्र से कल रात से मन में सुलग रहा प्रश्न पूछा लिया।

'इसमें तुम्हें स्कूल जाने की जरूरत नहीं है। घर में ही पढ़ाई कर इम्तिहान दे सकती हो।'

'लेकिन इसका फॉर्म कहाँ मिलता है और कब भरे जाते हैं?' पूनम ने शीघ्रता से पूछा।

'आजकल फॉर्म मिल रहे हैं।' जवाब दिया राघवेंद्र ने।

आज की इस थोड़ी सी मुलाकात में पूनम को बिना स्कूल गए आगे की पढ़ाई के बारे में सब पता लग गया। यह पता लगने से उसकी कल्पना को जैसे पंख लग गए। वह पढ़ेगी, नौकरी करेगी, पैसे उसके हाथ में आएँगे।

यही सपने देखती पूनम अब अगले उस दिन की प्रतीक्षा करने लगी, जब राघवेंद्र उसके लिए परीक्षा के फॉर्म और किताबें लेकर आएगा। यह काम उसने राघवेंद्र को ही सौंप दिया।

दूसरे दिन राघवेंद्र जब कॉलेज जाने लगा तो किसी बहाने वह कमरे से बाहर निकल आई और इशारों-इशारों में राघवेंद्र को फॉर्म और किताबें लाने के लिए याद दिलाना न भूली।

अनिच्छा से ही सही राघवेंद्र ने उसकी बात मान ली। फॉर्म भी ले आया और किताबें भी। पूनम का मन बल्लियों उछल रहा था। रात को सोने से पूर्व पूनम ने फॉर्म को एक किनारे से दूसरे किनारे तक पढ़ डाला। किताबों को भी उसने कई बार उलटा-पलटा और अंततः भविष्य के मीठे सपने बुनते हुए सो गई।

कुछ दिनों तक उसने फॉर्म और किताबें दोनों छुपाकर रखीं। आखिर इम्तिहान देने की अनुमति तो चाचा-चाची से ही लेनी थी। इसके लिए वह उचित समय की तलाश में थी। चाचा तो मान जाएँगे, लेकिन चाची को मनाना मुश्किल था। लेकिन इस बार वह भी हार मानने को तैयार न थी।

खाना खाने के पश्चात् चाची जैसे ही अपने कमरे में गई, तो पीछे से छोटी बहिन को लेकर पूनम भी चाची के पीछे-पीछे कमरे में आ गई। धीरे से उसने अपनी बात सावित्री के सामने रख दी।

सावित्री ने ध्यान से उसकी ओर देखा। नहीं, यह वह पूनम तो नहीं है, जो कभी सीधे मुँह बात भी नहीं करती। आज तो स्वर में मिश्री घुल गई हो जैसे।

'चाची मैं घर का पूरा काम करूँगी। आपको कोई परेशानी न होगी।' और उसने सावित्री के सामने हाथ जोड़ दिए। वह जानती थी इसके अलावा कोई चारा नहीं।

चाचा-चाची दोनों सामने थे। पूनम हाथ जोड़े खड़ी थी। चाची ने कुछ देर उसके चेहरे की ओर देखा। पूनम काँप उठी, मन-ही-मन ईश्वर को याद करने लगी।

और सावित्री वह तो किसी सपने में जी रही हो जैसे, यह क्या हो गया इसे आज। मन हुआ उसकी पिछली सारी उद्दंडता को माफ कर दे, जो कह रही है करने दे उसे।

आखिर पूनम की तरकीब काम कर ही गई। चाचा तो खामोश थे, लेकिन चाची ने अपनी सहमति दे दी। पूनम खुशी से नाच उठी। लपककर उसने चाची के पैर छू लिये और इस बार सोच-समझकर नहीं बल्कि मन से, सच्ची खुशी से।

सावित्री को भी न जाने क्यों कुछ अच्छा सा लगा। पूनम की आँखों में चमकते आँसू उसे मोती की तरह नजर आए। मन हुआ बिन माँ-बाप की इस बच्ची के सिर पर हाथ फेर दे। लेकिन अहम्वश ऐसा किया नहीं।

पूनम खुश थी, बहुत खुश। दूसरे ही दिन उसने फॉर्म भरकर राघवेंद्र को दे दिया। फॉर्म जमा हुआ तो पूनम ने पढ़ाई शुरू कर दी और इस काम में उसकी मदद की राघवेंद्र ने। पढ़ाई छूटे कई वर्ष हो चुके थे, इसलिए उसकी पढ़ने की आदत भी जाती रही थी। राघवेंद्र ने फिर मदद की, पढ़ाई

करने का तरीका समझाया। बताया कि कैसे वह घंटों पढ़ाई कर पाता है।

पूनम उसकी कृतज्ञ थी। दादी के जाने के बाद पहली बार किसी ने उससे प्यार से बात की। यद्यपि बाकी परिजनों के प्यार को खोने में पूनम की स्वयं की गलती कम न थी। अपनों के प्यार को तरसी पूनम धीरे-धीरे राघवेंद्र की ओर खिंचने लगी। पूनम के मन में पल रही इस भावना से राघवेंद्र तो अनजान ही था, लेकिन सावित्री को क्या हो गया।

पूनम के पल-पल पर नजर रखनेवाली सावित्री उसके कपड़े, उसके मेकअप, उसकी चाल-ढाल सबको परखने वाली सावित्री यहाँ क्यों चूक गई, क्यों उसे पूनम के हावभाव में कोई अंतर नजर न आया? हमेशा चिढ़कर बात करनेवाली पूनम फूल की तरह हलकी क्यों हो गई थी। क्यों वह बात-बात पर हँस पड़ती थी। जो भी काम दो उसे बिना किसी आपत्ति के मुसकराते हुए कर डालती। यह बदलाव सावित्री को दिखाई न दिया या शायद वह इसका कारण पढ़ने के लिए पूनम को मिल गई अनुमति ही समझती रही।

पूनम देर रात तक पढ़ाई करती। सावित्री का मन बैठा जाता, बिजली का न जाने कितना बिल आनेवाला है अब। नरेन से मन की बात कही। लेकिन उसने बात को टाल दिया।

'पूनम तू दिन में पढ़ाई क्यों नहीं करती?' नहीं रहा गया तो उसने बोल ही दिया।

'चाची दिन में शोर बहुत होता है, रात को तो शांति से पढ़ सकते हैं, समझ में भी आ जाता है, दिन में तो ध्यान बँटता है।'

चाची ऐसा सुझाव क्यों दे रही है इसका कारण पूनम अच्छी तरह जानती, समझती थी, लेकिन उस समय चुप रहने में ही उसने अपनी भलाई समझी।

'बस, किसी तरह अपनी आगे की पढ़ाई पूरी कर अपने पैरों पर खड़ी हो जाऊँ तब बताऊँगी चाची को तो।' यही सोचकर फिलहाल वह चुप थी।

पूनम ने दसवीं पास कर ली। स्कूल का मुँह देखे बिना भी अच्छे नंबरों से पास हुई थी पूनम। उसका मन-मयूर नाच उठा। राघवेंद्र को सबसे पहले ये खबर देने की इच्छा हुई, लेकिन वह तो छुट्टियों में अपने घर गया था। पूनम एक-एक दिन गिनने लगी। चाचा भी उसकी इस सफलता से खुश थे, लेकिन सावित्री ने कुछ अधिक उत्साह न दिखाया। पूनम का उत्साह चरम पर था। अपने सपने पूरे होते दिख रहे थे उसे। एक ओर तो उसके पढ़ाई के सपने थे और दूसरी ओर एक और सपना था, जिसका राजकुमार था राघवेंद्र।

छुट्टियाँ बिताकर राघवेंद्र लौटा तो पूनम के चेहरे पर सैकड़ों कमल खिल उठे। अंक तालिका लेकर सीधे उसके कमरे में पहुँच गई।

'मैं पास हो गई, देखो मेरी मार्कशीट।' कहते हुए पूनम की आँखों में सैकड़ों जुगनू चमक रहे थे। अपने सबसे प्रिय व्यक्ति को अपनी सफलता के बारे में बताने की खुशी उसके चेहरे पर साफ झलक रही थी।

'बहुत अच्छा!' उसकी मार्कशीट देखने के बाद राघवेंद्र ने पूनम का सिर हलके से थपथपाया। उसे अच्छा लगा, साथ ही गर्व भी महसूस हुआ। पूनम पर भी और स्वयं पर भी। यद्यपि आरंभ में जब पूनम बार-बार उसके कमरे में उसकी मदद लेने पहुँच जाती तो मन-ही-मन वह खीझ उठता, अपनी पढ़ाई करे या इसे समझाए, लेकिन आज पूनम की खुशी देख उसे अच्छा लगा।

और पूनम को अच्छी लगी राघवेंद्र की खुशी। मन के किसी कोने में दबी राघवेंद्र की धुँधली सी तसवीर और स्वच्छ हुई।

'अब आगे क्या करूँ?' राघवेंद्र ही उसका सलाहकार और उसका दोस्त था।

'बारहवीं भी ऐसे ही कर सकती हो।'

'और उसके बाद?' पूनम की आकांक्षाओं को पंख लग चुके थे।

'उसके बाद बी.ए. और क्या?'

'क्या बी.ए. करने से नौकरी मिल जाएगी।'

'शायद, नहीं।'

'तो फिर क्या फायदा पढ़ने का?'

'अगर तुम पढ़ाई करके नौकरी ही करना चाहती हो तो बारहवीं या बी.ए. करने से अच्छा तो कोई कोर्स कर लो।'

'कौन सा कोर्स कर सकती हूँ?' उत्सुकता से पूछा पूनम ने।

'टाइपिंग सीख लो या नर्सिंग का कोर्स कर लो। इससे तुम्हें काम मिल जाएगा।'

'नर्स क्यों? डॉक्टर क्यों नहीं?' पूनम की महत्त्वाकांक्षा ने कुलाँचे मारना आरंभ कर दिया।

'बेवकूफ! डॉक्टर बनने के लिए साइंस विषय के साथ बारहवीं जरूरी है और रोज स्कूल भी जाना पड़ेगा।' राघवेंद्र उसकी समझ पर हँस दिया।

पूनम का चेहरा बुझ गया। टाइपिस्ट, नर्स जैसी नौकरी का सपना तो पूनम को भूले से भी न आया था। उसके सपने तो बहुत ऊँचे थे, आकाश छूते हुए, उसे निराशा हुई।

इनसान का मन भी अजीब है। जब कुछ प्राप्त नहीं होता तो थोड़ा सा ही पाने को भागता है, और जब रास्ते खुलने लगते हैं तो और अधिक पाने को दौड़ता है। यही हाल पूनम का भी था। कहाँ तो सावित्री उसे आठवीं के बाद पढ़ने भी न दे रही थी और अब दसवीं कर पाई तो सपनों ने मन की गति से भी तेज कुलाँचें मारना आरंभ कर दिया।

लेकिन नर्सिंग और टाइपिंग का कोर्स करने भी तो उसे बाहर ही निकलना था। क्या सावित्री इजाजत देगी इस बात की? और खर्चा कहाँ से आएगा?

'चाची कुछ न करने देगी मुझे।' पूनम के स्वर में मायूसी थी, 'पहले तो वह मुझे घर से बाहर जाने न देगी और फिर किसी तरह से तैयार हो भी गई तो इस कोर्स में तो खर्चा बहुत आएगा।'

'एक बार समझाने की कोशिश करो। क्या पता वह राजी हो जाए।' राघवेंद्र ने कहा तो पूनम ने हाँ में सिर हिलाया।

'तुम तब तक मेरे लिए नर्सिंग का फार्म ला दोगे?' उसने राघवेंद्र से पूछा।

'हाँ, ला दूँगा, लेकिन पहले तुम अपने चाचा-चाची से बात कर लो।' राघवेंद्र ने जवाब दिया और फिर अपनी किताबों को सँभालने लगा। पूनम के इस व्यवहार से एक बार फिर उसे खीझ हो आई।

राघवेंद्र अपनी पढ़ाई के चलते ही तो छात्रावास छोड़कर अलग कमरे में रहने आया था, सोचा था यहाँ आकर बिना किसी व्यवधान के पढ़ाई कर पाएगा, लेकिन पूनम कभी-कभी तो उसे बुरी तरह परेशान कर डालती। उसे क्रोध भी आता, लेकिन अगले ही पल बिन माँ-बाप की लड़की पूनम को देख उसके मन में दया उभर आती और उसी दयाभाव के कारण वह उसकी मदद करता रहा। उसे तो स्वप्न में भी अनुमान न था कि उसे लेकर पूनम के मन में क्या चल रहा है।

एक दिन मौका पाकर पूनम ने अपने मन की बात सावित्री के सामने रख दी।

'चाची मैं नर्सिंग का कोर्स करना चाहती हूँ।'

सावित्री ने पूनम की तरफ ध्यान से देखा। यह क्या हो गया इसे। इसे दसवीं का इम्तिहान देने भर की इजाजत क्या दी, यह तो सिर पर ही सवार हो गई।

'यह क्या नई रट पकड़ ली तूने? लड़का देख रहे हैं तेरे चाचाजी तेरे लिए। बहुत हो गई दसवीं तक की पढ़ाई,' चाची ने खा जानेवाली निगाहों से घूरा उसे।

'लेकिन मैं शादी नहीं करना चाहती अभी।' शादी का नाम सुनते ही पूनम काँप उठी। न जाने किसके पल्ले बाँध देंगे ये उसे। राघवेंद्र का चेहरा उसकी आँखों में घूम गया और फिर उसे तो अभी अपने पैरों पर खड़ा होना था।

'तो फिर क्या करेगी तू?' सावित्री का स्वर कटु हो आया।

'पढ़ाई करूँगी। अपने पैरों पर खड़ी होऊँगी। फिर शादी की सोचेंगे।' पूनम के स्वर की दृढ़ता सावित्री ने भी महसूस की।

'पढ़ाई करेगी, नौकरी करेगी? पैसे कमाएगी और जो कोर्स करने में खर्चा आएगा उसका क्या? फिर तेरी शादी भी तो हमें ही करनी है। माँ-बाप छोड़ गए हैं तो निभाना तो होगा ही हमें। ऐसे ही तो कुँवारी न रहने देंगे। जा, जाके बरतन धो। बड़ी आई पढ़नेवाली।'

चाची अपना निर्णय सुना चुकी थी। उसे बदलना बहुत आसान न था। पूनम का मन हुआ घर के सारे बरतन फोड़ डाले। उसी मन:स्थिति और क्रोध में बरतन धोने की आवाज कुछ ज्यादा ही आई।

'अरे फोड़ेगी क्या बरतनों को?' चाची की आवाज आई तो पूनम को आभास हुआ। क्यों इन बेजान बरतनों पर अपना गुस्सा उतार रही है वह। कुछ और सोचे तो ज्यादा अच्छा होगा, जैसे भी हो शादी तो रोकनी ही होगी अभी।

उसी रात को राघवेंद्र को खाना देने गई तो उसकी आँखों से आँसू निकल आए। आँखों में आँसुओं के साथ चेहरे पर गुस्से के भाव।

'वे मुझे पढ़ने नहीं देंगे।'

'क्यों, क्या कहा तुम्हारी चाची ने?'

'कहा, खर्चा कहाँ से आएगा?' पूनम का स्वर किसी गहरे कुएँ से आता प्रतीत हुआ।

राघवेंद्र कुछ देर सोचता रहा, यूँ तो पूनम के बार-बार उसके पास आने से उसकी पढ़ाई का नुकसान होता और उसके जाने के बाद देर तक वह उसकी स्थिति के बारे में सोचता रहता। कभी-कभी उसे लगता कि मदद करने के इस जज्बे ने उसे अपने उद्‌देश्य से भटका दिया है। लेकिन पूनम के आँसुओं ने उसे एक बार फिर द्रवित कर दिया। जब ये पढ़ना चाहती है तो इसमें उसके चाचा-चाची क्यों ऐतराज है। उनके स्वयं के बच्चे तो पब्लिक स्कूल में पढ़ रहे हैं, आखिर कैसे मदद करे वह उसकी।

'पूनम, ये मकान तुम्हारे चाचा का है क्या?' ऐसे ही पूछ लिया उसने।

'पता नहीं। वैसे है बहुत पुराना।'

'और दुकान?'

'वह भी नहीं पता, लेकिन इतना पता है कि पहले मेरे दादाजी चलाते थे उस दुकान को, फिर पिताजी और चाचाजी।' पूनम राघवेंद्र के प्रश्न का आशय समझ नहीं पाई।

'अगर यह संपत्ति पुश्तैनी है तो इसमें तुम्हारे पिता और चाचा का बराबरी का हिस्सा है, तुम्हारे पिता तो रहे नहीं, अब इसलिए उनका हिस्सा तुम्हारा है। तुम्हारा भी हक है इस पर। उनसे बोलो तुम्हारे हिस्से की जायदाद से पढ़ा लेंगे वे तुम्हें।' राघवेंद्र ने एक और राह सुझाई।

'लेकिन ऐसा कैसे होगा? उन्होंने ही तो पाला है मुझे और फिर शादी का खर्चा भी वे करेंगे।' राघवेंद्र की बात सुन पूनम का अंतर्मन काँप उठा।

'तो क्या हुआ? शादी में इतना खर्चा थोड़े ही होता है और फिर तुझे शादी की जल्दी है या पहले पढ़ाई करनी है। शादी तो बाद में भी हो जाएगी।'

यह बात तो कभी भूलकर भी उसके मन में न आई थी। वास्तव में वह इस बात को जानती ही न थी कि वह भी इस मकान-दुकान में हिस्सेदार है। आज राघवेंद्र के कहने से उसके मन के किसी कोने में यह बात बैठ गई।

'ठीक ही तो कह रहा है राघवेंद्र, उसका हिस्सा है, इस मकान और दुकान में और चाची को देखो तो उसे नौकरानी से भी बदतर समझती है।

राजकुमारी को महल तो नहीं मिल रहा था, लेकिन इस छोटे से मकान के आधे हिस्से की मालकिन होने के भाव ने उसे गर्व से भर दिया।

रातभर पूनम सो नहीं पाई।

रह–रहकर उसे राघवेंद्र की कही बात याद आती रही। मन में विचारों की उथल–पुथल मची थी। पूनम लाख जिद्दी हो, चाची से नफरत करती हो, लेकिन थी तो इनसान ही और अब उम्र भी इतनी कम न थी कि भले–बुरे की समझ ही न हो। वैसे तो रास्ता तो अच्छा सुझाया है राघवेंद्र ने। लेकिन…। लेकिन क्या वह ऐसा कर पाएगी? क्या वह चाचा–चाची के सामने अपने हिस्से वाली बात कर पाएगी, नहीं…। ऐसी हिम्मत कैसे करेगी वह? आखिर उन्होंने इतने छोटे से पाला–पोसा है उसे। आगे की जिम्मेदारी भी उन्हीं की है। लेकिन दूसरी ओर अपने भविष्य का प्रश्न भी दिमाग में कौंधता, अभी वह पढ़ना चाहती है, लेकिन चाची सिर्फ पैसे की कमी का रोना–रोकर उसके भविष्य को बनने से पहले ही समाप्त कर देना चाहती है। आखिर क्यों वह अपने हक के लिए न लड़े?

ऐसे ही कई प्रश्न उसके जेहन में आते–जाते रहे। फिर उसका अंतर्मन खुद ही जवाब देता।

'तो क्या हुआ। इसी हिस्सेदारी के एवज में तो उन्होंने पाला–पोसा उसे। वरना कौन किसी को पूछता है इस दुनिया में? अगर वे उसे कोर्स करवा भी देंगे तो कौन सी बड़ी बात है। आखिर यह जमीन–जायदाद बाद में उन्हीं की तो होनी है।'

आखिर पूनम ने निश्चय कर ही लिया कि वह इस बारे में बेधड़क चाचा–चाची से बात करेगी।

सुबह सारा काम–काज निबटाने के बाद वह चाची के पास चली गई।

'चाची…!' उसने हिम्मत जुटाई।

'बोल…।' सावित्री ने उसकी ओर देखा, कुछ अजीब से भाव थे पूनम के चेहरे पर, अब क्या कहना चाहती होगी ये लड़की।

पूनम सावित्री के सामने तनकर खड़ी थी।

'चाची, मैं जानती हूँ मेरी पढ़ाई का खर्चा कहाँ से आएगा।'

'बता?' उसके हाव–भाव देख सावित्री जल–भुन गई।

कह तो ऐसे रही है जैसे कौन सा खजाना मिल गया हो इसे। उसने मन-ही-मन में सोचा। लेकिन सावित्री की सोच वहाँ तक तो जा नहीं सकती थी, जो पूनम ने सोचा था। निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में पली-बढ़ी सावित्री के संस्कारों में भूलकर भी ये न था कि पिता की संपत्ति में बेटी का भी हिस्सा होता है। वह तो बेटियों को पराए घर की ही मानती आई थी और उनके विवाह में हुए खर्च को ही पिता की संपत्ति में उनका हिस्सा मान लिया जाता था।

'चाची, मकान और दुकान में जो मेरा हिस्सा है, उसके बदले में तुम मुझे कोर्स करवा दो।' पूनम ने अपनी बात जल्दी से कह दी, क्योंकि यदि वह अब सोचने में समय गँवाती तो कभी न कह पाती।

सावित्री को लगा जैसे कहीं कोई विस्फोट हुआ हो। ये क्या कह गई पूनम और इतनी हिम्मत आई कहाँ से इसके अंदर? किसने बताया इसे कि ऐसा भी हो सकता है? अपना दिमाग तो चला नहीं होगा यहाँ तक। कौन होगा? किससे मिलती है यह? दूर-दूर तक उसके दिमाग में किसी का नाम न आया, पूनम तो घर पर ही रहती है फिर कौन हो सकता है?

'राघवेंद्र! शायद वही! तो क्या पूनम को खाना देने के लिए वहाँ भेजकर उसने भूल की? हाँ यह भूल ही थी?' अपने आपको बहुत चतुर समझनेवाली सावित्री यहाँ मात खा गई?

'शाम को तेरे चाचा आएँगे उनसे बात करना।' बात को उस समय तो टाल दी सावित्री ने, लेकिन मन से सामान्य न हो पाई।

सावित्री दिन भर परेशान रही। जब वह ब्याह कर इस घर में आई थी, पूनम छोटी सी बच्ची थी। पाल-पोसकर बड़ा किया। सामर्थ्य के अनुसार पढ़ाई भी करवाई, अब उसके विवाह के लिए लड़का भी देख रहे हैं। लेकिन पूनम आज क्या कह गई? क्या सारे रिश्ते-नातों को भूल गई है। अब यह इतनी बड़ी और समझदार हो गई है कि मकान और दुकान में हिस्सा माँगने लगी? क्या आज तक ऐसा कहीं हुआ है कि किसी लड़की ने पिता की संपत्ति में हिस्सा माँगा हो?

दिमाग फिर गया है इस लड़की का। न जाने कौन सा भूत सवार हो गया है इस पर।

पूनम की इस माँग पर उसे बार–बार गुस्सा आता रहा, लेकिन वह बोली कुछ नहीं। इस बारे में पति से ही बात करना उसने ठीक समझा।

शाम को नरेन दुकान से आया तो पूनम की एक नई गुस्ताखी सामने थी। पूर्व में भी कई बार पूनम की शिकायत आई, लेकिन इस बार तो बात कुछ ज्यादा ही गंभीर थी।

नरेन चौंका, यह क्या कह दिया पूनम ने? सावित्री और पूनम के बीच जो भी खींचतान रही हो, लेकिन उसने कभी ऊँची आवाज में डाँटा तक नहीं उसे। पत्नी के दबाव में और घर को कलह से बचाने के लिए वह चुप ही रहता था। लेकिन आज तो पूनम ने हद ही कर दी। उसे बहुत क्रोध आया पूनम पर।

'बुलाओ उसे! इतनी हिम्मत हो गई उसकी कि रिश्ते का लिहाज भी भूल गई,' पूनम पर इतना गुस्सा होते हुए सावित्री ने पहली बार देखा नरेन को।

पूनम आ गई निडर, निर्भीक, चेहरे पर डर और शर्म का कोई नामोनिशान नहीं। नरेन आश्चर्यचकित था, उसका यह रूप देखकर। अब तक की उसकी शिकायतों को बालपन की शरारतें समझ माफ करता गया। सावित्री ने कभी घर से पैसे गायब होने की शिकायत की तो कभी उलटे–सीधे जवाब देने की। लेकिन नरेन ने इसे सावित्री और पूनम का आपसी मामला समझ तूल देने का प्रयास न किया। लेकिन अब तो अति कर दी इसने। कहाँ से इस बित्त भर की छोकरी के मन में आया होगा कि मकान में इसका भी हिस्सा है।

पूनम अब नरेन के सामने खड़ी थी।

'पूनम, क्या कह रही है तुम्हारी चाची? क्या सुन रहा हूँ मैं?'

'चाचाजी, मुझे नर्सिंग का कोर्स करना है। आगे पढ़ना है अपने पैरों पर खड़ा होना है।'

'तो कोर्स करने के लिए तुझे तेरे हिस्से की दुकान और मकान चाहिए?' प्रश्न किया नरेन ने।

'हिस्सा नहीं देते तो उसके बदले का पैसा दे दो, मैं अपनी जिंदगी स्वयं जी लूँगी।' उसके स्वर में उपहास का सा भाव था।

'अपनी जिंदगी! तेरी जिंदगी हमसे अलग है क्या, तेरा बुरा सोचेंगे क्या हम कभी। हम तो तेरा घर बसाने की सोच रहे थे, लेकिन यह बात किसने डाल दी अब तेरे दिमाग में।' नरेन सोच में पड़ गया।

'किसी ने नहीं, मुझे पढ़ना है और अपने बारे में स्वयं सोचना है। आपके पास पैसा नहीं है, इसलिए मैंने यह बात कही।' पूनम ने साफ-सपाट जवाब दिया।

नरेन चुप, खामोश, आहत। क्या करे क्या न करे? भतीजी का कहना गलत भी नहीं था। संपत्ति में उसका हिस्सा है, इससे उसे भी कहाँ इनकार था।

लेकिन यह तरीका तो नहीं था, अधिकार प्रदर्शन का।

बिन माँ-बाप की नन्ही सी पूनम याद आई, वह पूनम याद आई, जो चाचा की बाँहों के झूले के बिना सो न पाती थी, वह पूनम याद आई, जिसे अपने हाथों से इस्तरी किए कपड़े पहनाकर नरेन स्कूल छोड़ा करता था। क्या पूनम भूल गई सबकुछ, लेकिन नरेन तो कुछ न भूला था। बस याददाश्त पर थोड़ी सी समय की धूल अवश्य जम गई थी, लेकिन यादें इतनी धुँधली भी न थीं कि याद न आए। नरेन की आँखें भर आईं, उसने मूँह दूसरी ओर फेर लिया। मुँह तो पूनम ने भी दूसरी ओर फेरा, लेकिन उसका कारण बिलकुल अलग था। चाचा की आँखों की नमी देख वह कमजोर नहीं पड़ना चाहती थी, इसलिए उस ओर देखना भी न चाहा, अब तो उसे इस मकान का आधा हिस्सा दिखाई दे रहा था, बस और कुछ नहीं।

नरेन की चुप्पी देख सावित्री को ही मोरचा सँभालना पड़ा।

'सुनो जी, ये लड़की तो हाथ से निकली समझो। इससे पहले कि

हमारी नाक कटाए, इसकी शादी कर दो। और सुन लड़की! आज से तेरा कमरे से बाहर भी निकलना बंद। राघवेंद्र को खाना देने भी तू नहीं जाएगी।'

राघवेंद्र का नाम सुन नरेन चौंका। तो ये राघवेंद्र है जो उसे ऐसी उलटी पट्टी पढ़ा रहा है। जिस थाली में खाया उसी में छेद कर रहा है? उन्होंने सोच लिया कि उससे मकान खाली करवा ही देंगे।

सावित्री के पास कुछ दिन पूर्व कोई पूनम के लिए रिश्ता लेकर आया था। लड़का विधुर था और पहले विवाह से उसकी एक बेटी थी। उम्र भी अधिक न थी और था भी खाते-पीते घर का। सबसे अच्छी बात थी कि वह घर के ही कुछ लोगों की उपस्थिति में साधारण तौर-तरीके से ब्याह करना चाहता था। सावित्री के मन में एक बारगी तो लालच आ ही गया था, लेकिन पति इस बात को नहीं मानेंगे, यह बात जानती थी। इसलिए उनसे कभी कहा नहीं। लेकिन आज गुस्से में ये बात मुँह से निकल ही गई।

'अब अपने घर जाकर करना जो करेगी। कह देना अपने पति से कि तुझे घर का काम नहीं करना। बच्चे नहीं पालने, बल्कि पढ़ाई करनी है।'

क्षोभ और गुस्से से पूनम की आँखों से आँसू निकल आए। गुस्से में वह यह भी भूल गई कि अभी भी चाचा से माफी माँग ले तो उसका कहा वह मान सकते हैं। लेकिन सोचने-समझने की शक्ति खो चुकी पूनम छोटे-बड़े का लिहाज भी भूल चुकी थी, झुक जाना उसकी शान के खिलाफ था।

इस समय तो राघवेंद्र उसे अपना सबसे बड़ा हितैषी लग रहा था। उसकी सहानुभूति दया और उसके अपनेपन को पूनम प्यार समझ बैठी। उसे लग रहा था कि चाचा-चाची से विद्रोह कर भी लेगी तो राघवेंद्र तो है ही उसके साथ।

पूनम ने उस रात भोजन न किया। यों तो सावित्री और नरेन ने ऐसा कुछ न बोला था, लेकिन फिर भी वह रोती-बिसूरती गई, आँखों में नींद

न थी। अब क्या करे, क्या न करे। बार-बार यह प्रश्न उसके जेहन में कौंध रहा था। उसका अगला कदम क्या होना चाहिए अब, अपना हक तो वह लेकर रहेगी, लेकिन यदि उससे पहले चाची ने उसका विवाह कर दिया तो? तो क्या होगा उसकी जिंदगी का? क्या होगा उस सपने का, जो उसने देखा है? उसे अपने प्रश्न का जवाब नहीं मिल पा रहा था।

'राघवेंद्र!' हाँ राघवेंद्र ही उसे इस समस्या से निजात दिला सकता है।

चाचा-चाची के कमरे की बत्ती बंद होने के थोड़ी देर बाद वह धीरे से उठी और राघवेंद्र के कमरे के दरवाजे पर खड़ी हो गई, दरवाजे की झिर्रियों से उसके कमरे में जलती रोशनी का आभास हो रहा था। उसने धीरे से दरवाजा खटखटाया। राघवेंद्र पढ़ रहा था। चारों तरफ सन्नाटा, दरवाजा खटखटाने की आवाज तो उसने सुनी, पर उसे समझ न आया कि यह आवाज कहाँ से आ रही है। जब दोबारा आवाज आई तो उसे समझ में आया। दरवाजा खोला तो पूनम सामने खड़ी थी। घड़ी पर निगाह डाली, रात के एक बज रहे थे।

पूनम की हालत भी अजब थी। आँखों से आँसू, चेहरे पर मायूसी और देर तक रोने के कारण सूज गई आँखें।

क्या हो गया इसे? और यह इतनी रात गए उसके पास क्यों आई है? वह कुछ सोच-समझ पाता इससे पहले ही पूनम उससे लिपट गई।

'मुझे यहाँ से कहीं दूर ले चलो राघव। यहाँ सब मेरे दुश्मन हैं, कोई कुछ न करने देगा मुझे।'

राघवेंद्र हैरान! ये क्या कह रही है पूनम? कहाँ ले जाए वह उसे और क्यों ले जाए?

'लेकिन क्यों?' उसने पूनम को अपने से अलग किया।

'तुमने मेरी बहुत मदद की है राघव। अब थोड़ी सी और करो। मुझे यहाँ से कहीं और ले चलो। मुझे पढ़ना है, अपना जीवन आपकी तरह से

जीना है, ये लोग तो मेरी शादी किसी और से कर देंगे।'

'किसी और से?' राघवेंद्र चौंका। तो क्या पूनम कहीं और विवाह करना चाहती है?

'हाँ राघव किसी और से। कोई एक बेटी का बाप है, उससे। अब तुम ही बताओ मैं क्या करूँ?'

'तो क्या तुम किसी और से शादी करना चाहती हो?' पूछ लिया राघवेंद्र ने।

राघवेंद्र के इस प्रश्न को सुन पूनम जैसे आसमान से गिरी।

ऐसा क्यों पूछ रहा है राघवेंद्र? क्या जानता नहीं कि किससे ब्याह करना चाहती है वह? क्या उसे सबकुछ अपने मुँह से कहना पड़ेगा? उसके मन में लज्जा के भाव आए, लेकिन इस समय उसने उन्हें दूर करना ठीक समझा; सबकुछ साफ-साफ कह दिया।

'यह क्या कह रहे हो राघव तुम, मैं तो तुमसे शादी करना चाहती हूँ।'

'मुझसे!' राघवेंद्र ऐसा चौंका मानो बिजली का नंगा तार छू लिया हो।

'ये क्या कह रही हो पूनम तुम! मैंने तो ऐसा कभी न कहा, मैं तो सिर्फ तुम्हारी मदद कर रहा था। तुम्हें दिशा दिखा रहा था। अभी तो मैं इस बारे में सोच भी नहीं सकता। मुझे तो बहुत पढ़ाई करनी है अभी।'

पूनम चुप्प। आँखों के आँसू थम गए। दोनों गालों का ताप अचानक बढ़ गया। उन पर बह रहे आँसू सूख गए। पूनम की ऐसी हालत देख राघवेंद्र डर गया। इस समय पूनम की हालत ऐसी थी कि उसे डाँटा भी न जा सकता था। समझाना ही श्रेयस्कर था। उसने उसके कंधे को पकड़कर सामने पड़े तख्त पर बिठा दिया।

'पूनम तुम अच्छी लड़की हो। पढ़ना चाहती हो अच्छी बात है। मैंने तुम्हें दिशा दी। अब अपने परिवार वालों को मनाना तुम्हारा काम है। प्यार से मनाओ या विद्रोह से, यह तुम्हारी मरजी। पढ़ने के प्रति तुम्हारी इच्छा

को देखते हुए मैंने तुम्हें सलाह दी। बस और कुछ नहीं। लेकिन तुम अपना हिस्सा लेकर अपनी जिंदगी अपने तरीके से जीना चाहती हो, यह बात कुछ ठीक नहीं लगती, अभी उम्र ही क्या है तुम्हारी? एक अकेली लड़की का बाहर रहना कितना मुश्किल है, जानती हो तुम? मैं तुम्हें क्या सहारा दे सकता हूँ। अभी तो मेरा स्वयं का भविष्य निर्धारित नहीं। तुम अपने कमरे में जाओ अब। बहुत रात हो चुकी।'

पूनम कुछ समझ पाई, कुछ नहीं। उसके सिर पर तो इस समय भूत सवार था। सोचने-समझने की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। इसी मन:स्थिति में उसकी आवाज तीव्र से तीव्रतम होती गई, राघवेंद्र उसको जितना चुप रहने को कहता, वह उतनी ही तेज आवाज में बोलती।

आधी रात, घुप्प अँधेरा, चारों ओर मरघटी सन्नाटा छाया हुआ था। बीच-बीच में किसी आवारा कुत्ते के भौंकने का स्वर सन्नाटे को तोड़ता। ज्यादातर लोग सो रहे थे। ऐसे में घर के एक कमरे में पूनम और राघवेंद्र की बहस चल रही थी। राघवेंद्र परेशान हो चला। हॉस्टल की व्यवस्थाओं से तंग आकर पढ़ाई के लिए उसने अलग से कमरा लिया था और यहाँ यह झमेला हो गया। पूनम का जैसे अपने आप पर काबू ही न था, राघवेंद्र के इनकार से उसे अपना सपना टूटता सा लग रहा था। राघवेंद्र के सहारे पर ही तो वह चाचा-चाची के सम्मुख अपने अधिकार की बात कर पाई थी। हताशा से उपजी इस बहस में ऊँची हुई आवाज के स्वर दीवारों को भेदते हुए सावित्री के कानों में भी पड़े।

इसके बाद जो हुआ वह बहुत बुरा था। सावित्री अपने साथ नरेन को भी ले आई। पूनम को तो कोई फर्क न पड़ा, लेकिन राघवेंद्र को काटो तो खून नहीं। वह लाख सफाई देता रहा, लेकिन दोनों ने उसकी एक न सुनी। नरेन का तो हाथ भी उठ गया उसके ऊपर।

❖ छह ❖

अगली सुबह तो सबके लिए हर सुबह के ही समान थी, लेकिन नरेन के घर में बहुत कुछ अलग था। राघवेंद्र सुबह ही अपना बोरिया बिस्तर उठा कमरा खाली कर गया। वैसे भी कुछ अधिक सामान न था उसके पास, बस कुछ कपड़े और किताबें जो ऑटो में ही समा गईं। मोहल्ले में किसी को कानों-कान खबर भी न हुई कि उस रात उस घर में क्या तूफान आया और उसमें क्या-क्या बिखर गया।

पूनम को कमरे में बंद रखने की हिदायत दे नरेन दुकान पर चला गया। पूनम ने भी न नाश्ता किया, न दरवाजा ही खोला।

संयोग से व्यस्तता के चलते नरेन दोपहर के भोजन पर भी घर न आ पाया और सावित्री ने भी पूनम की सुध न ली, रात को नरेन वापस लौटा तो पूनम के बारे में पूछा।

'कहाँ होगी! पड़ी है कमरे में। मुँह दिखाने लायक रही है क्या?'

'कुछ खाया उसने?' नरेन की चिंता उसके शब्दों में उमड़ आई।

'नहीं। मेरा तो उसकी शक्ल देखने का मन नहीं।' सावित्री का क्रोध अभी शांत न हुआ था।

'कोई बात नहीं, गुस्सा तो मुझे भी बहुत है, लेकिन यूँ खाना-पीना छोड़ देगी तो बात बिगड़ ही जाएगी। चलो, तुम खाना रखो, मैं बुलाता हूँ उसे। कुछ बात भी कर लेंगे उससे, आखिर क्यों उसका मन ऐसा हो रहा है।'

क्षमा बड़न को चाहिए छोटन को उत्पात। इसी राह पर चल रहा था नरेन, लेकिन सावित्री को यह पसंद न आया। उसके बाद जो कुछ हुआ वह किसी भयंकर दुःस्वप्न से कम न था।

नरेन ने दरवाजा खटखटाया, आवाज दी, लेकिन अंदर से कोई प्रतिक्रिया न हुई। थोड़ी देर हो गई तो सावित्री और नरेन दोनों घबराए।

'देख क्या रहे हो, तोड़ डालो दरवाजा।' पूनम की धमकियों से घबराई सावित्री ने कहा।

जीर्ण-जीर्ण दरवाजा धक्का भी बरदाश्त न कर पाया। अंदर का दृश्य देखकर सावित्री के मुँह से तो चीख ही निकल गई।

कमरे के एक कोने में मुँह से फेन उगलती पूनम बेहोश पड़ी थी और पास ही पड़ा था चूहे मारने की दवाई का खाली पाउच।

घबराए नरेन ने कोशिश की, पूनम को हिला-डुलाकर मुँह में पानी के छीटें मारकर होश में लाने की, लेकिन सब व्यर्थ, वह बाहर की ओर दौड़ा।

'कहाँ जा रहे हो!' सावित्री ने रोका।

'ऑटो लाने, अस्पताल तो ले जाना होगा, न जाने कितनी देर पहले खाई थी इसने ये दवाई, अब तक तो पूरे खून में रच-बस गई होगी।'

'पागल हो गए हो क्या? कितनी बदनामी होगी, सोचा है तुमने। किसी डॉक्टर को कुछ ले-देकर घर पर ही ले आओ।'

'पागल मैं नहीं तुम हो गई हो। कुछ हो जाएगा इसे, तो क्या जवाब दूँगा भैया-भाभी को।' और नरेन सावित्री को झटक तेजी से बाहर निकल गया।

पिछली रात से जिस बात को छुपाने में वे कामयाब हुए, वह अब जगजाहिर हो गई, जितने मुँह उतनी बातें।

'अरे देखो तो बिन माँ-बाप की बच्ची को कैसे पाला इन्होंने कि उसे जहर खाने पर मजबूर कर दिया।' नुक्कड़ पर खड़ी महिलाओं की भीड़ में से एक ने कहा।

'ना-ना । चाचा-चाची का ही दोष नहीं है इसमें, इस छोरी को देखा तुमने, एकदम तीखी मिरच और फैशन देखो, आँखों में सुरमा लगाए बिना तो कमरे से बाहर न निकलती थी।'

'मैंने तो सुना वह किराएदार छोरा भी रातों-रात कहीं भाग लिया। कुछ ऐसा-वैसा तो न था इन दोनों के बीच में?'

और ऐसी ही न जाने कितनी बातें, बातों की डोर तो उधड़ी हुई स्वेटर के धागे की तरह खिंच रही थी, जितना खींचों उतना उधड़ती जाती।

आत्महत्या के प्रयास का मामला था, सो पुलिस को तो आना ही था। पूनम को तो होश आया न था, इसलिए पुलिस ने नरेन और सावित्री से ही पूछताछ आरंभ की।

'कुछ न किया हमने। ये लड़की न जाने कितनी बार जहर खाकर मर जाने की धमकी दे चुकी थी। कहती थी तुम्हें फँसाकर मर जाऊँगी।' सावित्री रोती भी जाती और बोलती भी।

नरेन चुप कराने का प्रयास करता, लेकिन सावित्री का आक्रोश शांत न हुआ। परदे के पीछे की बातें भी सार्वजनिक हो गईं, तब न उसे अपने सम्मान का ध्यान आया न पूनम की जिंदगी का। यह भी न सोचा कि उसके इस तरह घर के गंदे पोतड़ों को सार्वजनिक रूप से धोने का पूनम की बची हुई जिंदगी पर क्या असर पड़ेगा।

'साहब पूछो उससे, रात के दो बजे क्या करने गई थी उस छोरे के कमरे में। डाँटते नहीं तो क्या आरती उतारते उसकी! मेरी बेटी होती तो वहीं गाड़ देती जमीन में, इसे तो छोड़ भी दिया।'

'इसका मतलब आप उसे अपनी बेटी नहीं समझते?' पुलिस इंस्पेक्टर ने बाल की खाल निकालते हुए सुराग तलाशने की कोशिश की, लेकिन क्रोध में अंधी सावित्री को समझ न आया। नरेन कुछ कहता इससे पहले ही वह बोल पड़ी।

'कैसे समझूँ अपनी बेटी उसे? उसने कभी हमें अपना समझा, मेरे

बच्चों को, अपने भाई–बहन। न कभी नहीं, उसे तो सिर्फ अपने से मतलब है।' 'तुम चुप रहो सावित्री, मुझे बात करने दो।' आखिर नरेन को जोर से बोलना ही पड़ा।

'क्यों न बोलूँ मैं?' तुम अगर बोलने वाले होते तो आज ये जग हँसाई न होती। जब बोलने का वक्त था तब तो मुँह में दही जमाकर बैठ गए और अब मुझे चुप रहने को कह रहे हो।'

सावित्री किसी की सुनने को तैयार न थी, नरेन का मन हुआ दो थप्पड़ मारकर चुप करा दे इसको, लेकिन न तो संस्कारों में हिंसा भाव था, न स्वभाव में।

देर रात तक पूनम को होश न आया। पुलिस थाने और अस्पताल से खबरें बटोरने वाले कई अखबारों के पत्रकारों की फौज वहाँ इकट्ठी थी। कोई नरेन के बयान लेने की कोशिश करता तो कोई सावित्री के, नरेन तो चुप ही था लेकिन सावित्री? उसकी बातों ने पत्रकारों को अच्छा–खासा मसाला उपलब्ध करा ही दिया।

यह संयोग ही था कि अपने किसी परिचित को देखने अंबुज अस्पताल गया था और लौटते हुए मुख्य चिकित्सा अधिकारी से मिलने उनके कक्ष में बैठा ही था कि ये शोर–शराबा आरंभ हो गया।

'क्यों जहर खाकर जान देने की कोशिश की होगी इस लड़की ने? इसकी चाची जो कुछ कह रही है, उससे तो लगता है कि कुछ गलती हुई है इस लड़की से। नादान है, कच्ची उमर है, हो सकता है कुछ ऊँच–नीच हो गई हो।'

'लेकिन अभी तो उसने एक ही पक्ष की बात सुनी है, यह लड़की भी कुछ बोले तो वस्तुस्थिति पता चले।'

अंबुज यही सोच रहा था कि डॉक्टर ने बताया कि उस लड़की को होश आ गया है।

'मैं पढ़ना चाहती थी, लेकिन चाची ने मुझे आगे नहीं पढ़ने दिया। चाचा भी उन्हीं की बात सुनते थे, मेरी शादी ऐसे आदमी से करना चाहते

हैं, जिसकी पहली पत्नी मर चुकी है और उसका एक बच्चा भी है।'

बस, इससे अधिक और कुछ न बोली पूनम, लेकिन सावित्री ने चिल्ला-चिल्लाकर जो कहानी बयाँ की थी उससे साफ जाहिर था कि इसमें कोई लड़का भी शामिल है। हो सकता है दोनों के प्रेम का मामला हो और इसी कारण इस लड़की ने आत्महत्या का प्रयास किया हो।

कहानी के तीसरे कोण राघवेंद्र को भी पुलिस ने शीघ्र ही ढूँढ़ निकाला, बिना किसी लाग-लपेट के उसने सारी कहानी सुना दी।

'पूनम की पढ़ने में रुचि देखते हुए मैं उसकी मदद कर रहा था, बस और कुछ नहीं। सर मैं एक स्टूडेंट हूँ, मुझे इसमें मत घसीटिएगा, मेरा कॅरियर तबाह हो जाएगा।' और उसने दोनों हाथ जोड़कर सिर झुका लिया।

दो-चार और प्रश्न पूछने के बाद पुलिस ने राघवेंद्र को छोड़ दिया। उसकी बातों में उन्हें सच्चाई नजर आई।

पूरे तीन दिन अस्पताल में रही पूनम। अब वह पूरी तरह स्वस्थ थी, किंतु घटना का तनाव अब भी मौजूद था उसके चेहरे पर। आज उसे अस्पताल से छुट्टी मिलनी थी, तो अस्पताल प्रशासन ने नरेन और सावित्री को बुलावा भेजा।

'मैं उस घर में नहीं जाऊँगी, ये लोग मेरी किसी से भी शादी कर पीछा छुड़ा लेंगे और मैं पढ़ना चाहती हूँ, जीवन में कुछ बनना चाहती हूँ।'

'तो हम कौन सा खुश हैं? तुझे अपने साथ में रखकर, पूरे मोहल्ले में नाक तो कटवा ही दी हमारी, अब और क्या बाकी है,' और सावित्री ने जोर-जोर से रोना आरंभ कर दिया।

'तो कहाँ जाएगी ये? हम तो इसे आज अस्पताल से छुट्टी दे देंगे।' डॉक्टर असमंजस में थे।

किसी नारी निकेतन या फिर किसी आश्रम और फिर उन्हें अंबुज द्वारा चलाए जा रहे आश्रम का ध्यान आया और वही बना पूनम का ठौर।

सावित्री ने चैन की साँस ली, कुछ समय के लिए ही सही, इससे छुटकारा तो मिला।

अंबुज पूनम को अपने आश्रम में ले आया। उसे समझाया कि अभी भी आस बाकी है। अभी भी वह चाहे तो बहुत कुछ कर सकती है। जीवन अमूल्य है, उसे छोटी-छोटी परेशानियों के कारण गँवाया नहीं जा सकता। प्राणों की आहुति किसी बड़े उद्देश्य के लिए दी जाती है, लेकिन रोजमर्रा की परेशानियों से आहत हो अगर कोई अपने प्राणों का उत्सर्ग करना चाहे तो उससे अधिक कायर कौन होगा?

अंबुज पूनम की जिंदगी में देवदूत बनकर आए थे। आश्रम में पहुँच पूनम ने देखा कि वहाँ उसकी तरह की और भी कई लड़कियाँ और स्त्रियाँ हैं। स्वरोजगार के माध्यम से वे अपना जीवनयापन कर रही थीं। यहाँ तक कि उनकी मेहनत अब इस स्तर तक पहुँच चुकी थी कि वे आश्रम की आय बढ़ाने में भी सहायक थीं। अंबुज के प्रति सबके मन में बहुत श्रद्धा थी। अंबुज ने एक-एक कर सबका परिचय उससे करवाया। सिर्फ परिचय ही नहीं, वरन् सबके दुःख-दर्द की संक्षिप्त कहानी भी बताई गई उस पूनम को।

कोई पति के अत्याचारों से पीड़ित स्त्री जिसका न मायके और न ससुराल में कोई सहारा, तो कोई बिन माँ-बाप की सताई हुई लड़कियाँ। सबको सहारा दिया था अंबुज ने, इस आश्रम में।

एक लड़की जो पूनम की ही हमउम्र थी, पिछले चार-पाँच साल से इसी आश्रम में रह रही थी। उसके माता-पिता भी जीवित थे और अन्य भाई-बहन भी थे। उसकी कहानी तो बहुत ही अजीब थी।

चौदह बरस की उम्र थी, जब एक छोटी सी गलती की उसे इतनी बड़ी सजा भुगतनी पड़ी थी। पड़ोस में एक लड़का रहता था। बचपन में ही उस लड़की का मेलजोल उससे बढ़ा और उसे बहला-फुसलाकर वह लड़का अपने साथ भगा ले गया। माता-पिता को पता चला तो उन्होंने सिर पीट लिया। पुलिस से शिकायत तो कर दी, लेकिन पकड़े जाने पर

अपनाने को तैयार न हुए। थाने से छूटकर वह घर आई तो उन्होंने उसे बाहर निकाल दिया। न तो लड़के के घरवालों ने अपनाया, न स्वयं उसके घरवालों ने।

वापस थाने पहुँची तो किसी सहृदय पुलिसवाले ने यहाँ भेज दिया। तब से यहीं है। अचार, पापड़ बनाने में पारंगत हासिल कर चुकी है, साथ ही इतनी अच्छी स्वेटर बुनती है कि सर्दियों के मौसम में वे हाथों-हाथ बिक जाते हैं।

पूनम को यहाँ आकर अच्छा लगा, बल्कि यह कहिए कि यहाँ आकर पूनम को अत्यंत आत्मिक शांति का अहसास हुआ। जब उसने एक-एक कर सबकी कहानी जानी तो महसूस हुआ कि उसका दुःख तो कुछ भी नहीं है।

यहाँ रह रही महिलाओं को देखकर, वह अपना दुःख भूल गई। गजब की इच्छा-शक्ति थी इन महिलाओं में। इतने दुःख-दर्द के बाद भी वे सब जीने का जज्बा पाले हुई थीं। अंबुज के रूप में उन्हें आगे बढ़ने का सहारा मिला था।

सब खुश दिख रही थीं, लगता नहीं था कि उनके जीवन में कभी दुःख-दर्द रहा होगा। जीवन की इस नई सच्चाई से पहली बार रू-ब-रू हुई पूनम। उसने महसूस किया कि वह तो सबसे बड़ी मूर्ख थी, जो इतने से दुःख के कारण जान देने जा रही थी।

❖ सात ❖

पूनम की नई जिंदगी आरंभ हो चुकी थी। उसकी इच्छानुसार अंबुज ने उसे नर्सिंग स्कूल में दाखिला दिला दिया। बस आनेवाले सत्र से उसे अपनी पढ़ाई करनी थी।

पूनम प्रखर थी, तुरंत ही अपनी पढ़ाई में रम गई। अंबुज बीच-बीच में उसकी प्रगति जानता रहता। दो वर्ष बीतते-बीतते पूनम ने नर्सिंग प्रशिक्षण पूरा कर लिया।

इस बीच न तो उसके चाचा-चाची ने उसकी सुध ली और न ही पूनम ने उनके बारे में कुछ जानना चाहा। सावित्री का व्यवहार उसके साथ अच्छा न था, लेकिन उसके लिए वह भी कहीं-न-कहीं दोषी थी, पर नरेन? उसने तो बचपन में बहुत प्यार दिया था। तो क्यों न कभी नरेन को उसकी याद आई और न ही पूनम को अपने इस चाचा की।

लेकिन ऐसा भी न था। घर में जब कभी पूनम का जिक्र आता, सावित्री के मन से घृणा भरे उद्‌गार ही निकलते, लेकिन नरेन, उसे तो वह नन्ही सी बच्ची याद आती, जिसने बचपन में ही माता-पिता को खो दिया था और मरते हुए नरेन की माँ उसे उसके हवाले कर गई थी।

'क्या उसने अपने कर्तव्य को सहीं ढंग से निभाया? क्या जवाब देगा वह भैया-भाभी और माँ की आत्मा को', मन में सवालों का बवंडर उठता तो चल पड़ता वह आश्रम की ओर, लेकिन पूनम को आगे पढ़ाई करते देख उसे संतोष हुआ, 'कहीं उसके पूनम से मिलने पर उसे घर वापस

न भेज दिया जाए और फिर वह सावित्री के कोप का भाजन बने' यही सोच चुप रह गया।

नौकरी मिलना बहुत आसान तो न था, लेकिन अंबुज की मदद से पूनम को एक प्राइवेट अस्पताल में नौकरी मिल ही गई। वेतन अधिक न था, लेकिन आश्रम में रहते स्वयं का खर्चा तो चला ही सकती थी वह। वैसे भी आश्रम का नियम था कि जब कोई सदस्य कमाने लगता तो अपनी कमाई का एक हिस्सा उसे आश्रम में देना पड़ता, ताकि आश्रम का खर्चा चलता रहे और उन्हें भी अपनी जिम्मेदारी का अहसास हो। कई लड़कियों का विवाह कर भी उन्हें अपने-अपने घरों में व्यवस्थित कर चुका था यह आश्रम। और इसका पूरा श्रेय जाता अंबुज और उसके मन से किए गए परिश्रम को।

'सर आपसे एक मदद चाहिए।' एक दिन अंबुज आश्रम में आया तो पूनम ने उससे कहा।

'हाँ-हाँ, बताओ।'

'सर मैं अपने चाचा-चाची से अपना हिस्सा माँगना चाहती हूँ।'

पूनम की बात सुन अंबुज पल भर को चौंका। अपना अधिकार माँगना अच्छी बात है, लेकिन इस कड़वाहट के साथ।

'लेकिन पूनम…'

'सर, मेरा अधिकार है यह। मेरे पिता का हिस्सा था उस मकान और दुकान पर। उनके न रहने के बाद अब उनके हिस्से पर मेरा अधिकार है।'

'पूनम, अपना अधिकार माँगना अच्छी बात है, लेकिन इस कड़वाहट के साथ ठीक नहीं। मैं किसी को भेज दूँगा तुम्हारे साथ। एक बार प्यार से बात कर लेना अपने चाचा-चाची से।'

'आप नहीं जानते सर उनको। वे ऐसे नहीं मानेंगे।'

'ऐसा नहीं कहते पूनम। आखिर बचपन से उन्होंने ही तो पाला है तुम्हें।'

अंबुज को पूनम की बातें अच्छी नहीं लगीं। पूनम की चाची गलत

थी। उन्होंने छोटी सी बच्ची के साथ दुर्व्यवहार किया था। जाहिर है कि उसके बालमन पर उसका असर पड़ा होगा। लेकिन फिर भी वे लोग बड़े थे। पूनम को पाल-पोसकर उन्होंने ही बड़ा किया था। गलती करने पर तो अपने माता-पिता भी बच्चों को डाँटते-फटकारते हैं। पूनम ने भी तो अपनी पढ़ाई के लिए जायदाद में हिस्सा इस तरह से माँगकर गलत ही किया था।

अंबुज के समझाने का पूनम पर कितना असर हुआ, यह तो वही जानती थी। उसने सिर हिलाया, मानो सबकुछ समझ गई हो, लेकिन संतुष्ट नहीं थी। कैसे छोड़ दे वह चाचा-चाची को, जिन्होंने उसके पढ़ने का अधिकार छीन लिया था? उसका बचपन छीन लिया और अब उसके पिता के हिस्से पर भी कब्जा जमाए बैठे हैं। अंबुज उसके मन से इस बात को पूरी तरह निकालने में सफल न हुआ।

पूनम के दोबारा आग्रह करने पर एक दिन अंबुज ने अपने एक कर्मचारी को पूनम के साथ घर भेज दिया। पूनम जो भी बात करना चाहे, करे। वैसे भी पूनम की ये बात कानूनी तौर पर गलत न थी कि संपत्ति पर उसका भी हिस्सा था।

सावित्री तो अब उस घटना को भुला चुकी थी, उसके लिए अब पूनम मर चुकी थी, लेकिन घर के आँगन में पूरे दो वर्ष बाद पूनम को आया देखकर उसका दिल धड़क उठा।

'मैं आप दोनों से बात करना चाहती हूँ। चाचा को भी बुलवा लीजिए।'

'क्या बात करना चाहती है तू? पूरे मोहल्ले में, पूरे समाज में नाक कटवाकर तुझे चैन न पड़ा तो अब फिर से आ गई है यहाँ।' सावित्री उसे देखकर गुस्से से उबल पड़ी।

'आप उन्हें बुलवा दीजिए। मैं थोड़ी देर में चली जाऊँगी। जरूरी बात करनी है। नहीं बात करोगे तो कोर्ट का नोटिस मिलेगा।' पूनम ने सीधे-सीधे धमकी दे डाली।

कुछ तो पूनम की दृढ़ता और कुछ साथ में आए व्यक्ति का प्रभाव। चाची हक्की-बक्की रह गई, अब न जाने कौन सी आफत लेकर आई है,

जो कि कोर्ट–कचहरी की धमकी भी दे रही है। कहीं बवाल न हो जाए, इसलिए सावित्री ने पति को बुलवा लेना ही उचित समझा।

नरेन को आश्चर्य मिश्रित हर्ष हुआ, दो वर्षों बाद आखिर पूनम को घर की याद आई थी, लगा रिश्तों पर जमी बर्फ समय की आँच पाकर पिघल रही है।

आश्रम में रहने के बाद पूनम का आत्मविश्वास तो बढ़ा ही था और जब से पैसे हाथ में आने लगे थे तब से उसका आत्मविश्वास धीरे–धीरे गर्व में बदलता जा रहा था। अंबुज जैसे प्रभावशाली इनसान का हाथ सिर पर होने से वह और अधिक विश्वास से भर गई थी, पर साथ ही बचपन में दादी और चाचा का प्यार पाकर आई उद्दंडता, जो समय के साथ धीरे–धीरे कम होने लगी थी, अब फिर सिर उठाने लगी।

'हम तो ब्याह करना चाहते थे इसका। लेकिन इसने तो हमें कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ा। सारे मोहल्ले में नाक कटा दी हमारी।' चाची उस कर्मचारी के आगे अपना दुखड़ा रो रही थी।

पूनम ने मुँह फेर लिया। बात सुनकर भी अनसुनी कर दी। यही घर है वह, जिसमें उसने जन्म लिया था। माता–पिता की तो उसे बहुत याद नहीं, लेकिन दादी का प्यार खूब याद था। और साथ ही याद थी चाची की ज्यादतियाँ। बचपन से ही उस नन्ही सी लड़की को अपने बच्चों की आया बनाकर रखना, घर के काम करवाना, जरा सी गलती होने पर कड़ी सजा देना, जब चाहे स्कूल से छुट्टी करवा देना। ये सभी बातें पूनम के स्मृति पटल पर किसी चलचित्र की भाँति उभरने लगीं। मन कड़वाहट से भर उठा।

इस सबके बीच उसे राघवेंद्र की भी याद आई। आज भी उस कमरे में कोई किराएदार है, लेकिन इस बार लड़का नहीं, बल्कि लड़की है। उसे आज तक यह बात समझ में नहीं आई कि क्या राघवेंद्र के मन में सचमुच उसके लिए कुछ न था या फिर चाची का रौद्र रूप देखकर वह भयभीत हो गया था। अगर राघवेंद्र के मन में सचमुच कुछ न था तो अपनी स्थिति पर आज पूनम को शर्म महसूस हो रही थी। कैसे बिना कुछ सोचे–समझे

वह उस रात उसके साथ भाग जाने को तैयार थी।

यकायक पूनम की सोच को विराम लगा। चाचा घर आ चुके थे।

'आ गए तेरे चाचा। अब कर ले बात।' इतनी देर से उस व्यक्ति को अपना किस्सा सुनाती चाची एक ओर चुप बैठ गई।

चाचा आ गए थे। पूनम को देखकर एक बार उनके चेहरे पर हैरानी और प्रसन्नता के भाव उभरे, किंतु दूसरे ही क्षण वे सामान्य हो गए। या यों कहिए कि उन्होंने सामान्य दिखने का प्रयास किया। वे सोच रहे थे कि दो वर्ष बाद पूनम घर आई है, उसे देखते ही गले से लग जाएगी। लेकिन उनका सोचा तो उन्हीं के पास रह गया। गले लगना तो दूर, पूनम ने नमस्ते तक नहीं की। चाचा से मुखातिब होकर साफ सपाट शब्दों में बोली, 'मुझे इस घर में मेरा हिस्सा चाहिए, मेरा हक चाहिए। आप नहीं देंगे तो मैं कोर्ट जाऊँगी।' पूनम के शब्दों ने उसके स्वर को भी तीखा कर दिया।

सावित्री का चेहरा क्रोध से लाल हो उठा। ये बित्ते भर की छोकरी और ऐसे तनकर सामने खड़ी है, जैसे उसे पाल-पोसकर उन्होंने न जाने कितनी बड़ी गलती की हो। वह कुछ तीखा कहने ही वाली थी कि पति ने इशारे से रोक दिया।

नरेन ने तो कल्पना ही नहीं की थी कि दो वर्ष पहले कभी घर न आने को तैयार पूनम, एक बार फिर उनके सामने आ खड़ी होगी। पूनम की गतिविधियों की अधिक तो नहीं, किंतु थोड़ा-बहुत जानकारी उन्हें थी। यह उन्हें भी पता चल गया था कि नर्सिंग ट्रेनिंग करने के बाद वह किसी प्राइवेट अस्पताल में नौकरी करने लगी है।

वे तो समझ रहे थे कि पूनम अब अपनी दुनिया में खुश है और खुशी को घरवालों के साथ बाँटने आई है, हो सकता है जो गलती उसने की उसके लिए माफी भी माँग ले, अगर उसने माफी माँगी तो वे भी माफ कर देंगे उसे, नहीं जाने देंगे इस घर से। सावित्री चाहे जो भी कहे मना ही लेंगे वे उसे। लेकिन जो उसने कहा, इसकी कल्पना उन्होंने सपने में भी नहीं की थी।

परिस्थितियाँ बहुत विकट थीं और संवेदनशील भी, सो उसने सोच-समझकर ही बात को सँभाल लिया।

'कोर्ट जाने की जरूरत नहीं बेटी। हमें तुम्हारी शादी तो करनी ही थी। वह खर्चा भी हमें ही करना था। अब शादी तो शायद तू अपने आप ही कर ले। इसलिए तेरा हिस्सा तू ले ले।' चाचा के स्वर में तीव्र पीड़ा के साथ-साथ व्यंग्य का भाव भी था।

उनका स्वर सुन पूनम के तेवर भी कुछ ढीले हुए और साथ आया व्यक्ति भी अपने आपको सहज महसूस करने लगा। उसे तो लगा था कि यहाँ पर लड़ाई-झगड़ा, बहस-मुबाहिसा होगा, जिसकी मध्यस्थता उसे करनी होगी, लेकिन यहाँ तो कुछ हुआ ही नहीं।

'तो ठीक है, बँटवारा कर दीजिए।' पूनम ने विजयी भाव से कहा।

तीन कमरे एक किचन और छोटा सा आँगन, यही था मकान के नाम पर। अब उसके दो हिस्से कैसे हों, यह भी समस्या थी। दुकान भी छोटी सी थी। दो हिस्से तो क्या वह तो एक दुकान के लिए भी कम जगह थी। अब कैसे हो इसका बँटवारा?

'बेटी, तुम ही बता दो, कैसे बँटवारा हो? तुम जैसे चाहेगी हम वैसा ही करेंगे।' चाचा ने शांत भाव से पूछा।

अब तो पूनम से कुछ कहते न बना। बड़े तेवर के साथ अपना हिस्सा माँगने आई थी, लेकिन कैसे होगा हिस्सा, यह तो उसे पता न था।

कुछ दिनों में बता देने की बात कहकर पूनम वापस चली आई।

विजयी शेरनी की तरह पूनम आश्रम में लौट आई, लेकिन इस जीत में वह क्या हार गई इसका अहसास उसे तब न हुआ। उसे सचमुच यह उम्मीद न थी कि बात इतनी सरलता से बन जाएगी। चाचा से तो उसे अच्छे व्यवहार की उम्मीद थी, किंतु चाची इतनी खामोशी से सब स्वीकार कर लेगी, ऐसा उसने सोचा भी न था।

पूनम के सामने घर के बँटवारे को कोई भी विकल्प नहीं था, सो जब कुछ भी समझ में नहीं आया तो उसने अंबुज से ही सलाह लेने की ठान ली।

'क्या तुम वहाँ जाकर रहना चाहती हो?'

'नहीं सर। मैं एक पल भी उनके साथ नहीं रह सकती। वे किसी बूढ़े से मेरी शादी करा देंगे और नौकरी भी न करने देंगे।'

'तो फिर घर का क्या करोगी?' पूछा अंबुज ने।

'किराए पर दूँगी। मेरी आमदनी बढ़ेगी।'

'तो ठीक है, तुम ऐसा करो कि बजाय मकान में हिस्सा लेने के तुम प्रतिमाह कुछ पैसे लेती रहो। यही तुम्हारे लिए ठीक रहेगा।'

पूनम ने हाँ में सिर हिलाया। अंबुज की बात उसकी समझ में आ रही थी। अगर उसे मकान और दुकान में हिस्सा मिल भी जाए तो क्या करेगी वह? स्वयं तो रहने से रही। किराएदार ढूँढ़ने की झंझट, हर माह उससे किराया लेने जाओ। इससे अच्छा तो उसे पैसे ही मिल जाएँ।

अंबुज को अपने कर्मचारी से पूनम और उसके चाचा-चाची के बीच हुई बातचीत का पता चला। दरअसल वह जानना चाहता था कि उन्होंने पूनम की इस माँग का कोई प्रतिरोध किया या नहीं।

'नहीं सर, पूनम के चाचा तो बहुत सज्जन इनसान हैं। उन्होंने तो पूनम को दोबारा बोलने का अवसर तक न दिया।'

उसकी बात सुन अंबुज का माथा ठनका। अभी तक उसके लिए यही सच था, जो पूनम से सुना था। दूसरे पक्ष के सच से तो अनजान ही था। तो क्या पूनम का सच अर्द्धसत्य है? क्या पूनम भी कहीं गलत थी? जिस कारण उसकी चाची ने उसे समझाने की कोशिश की, जिसे इसने दुर्व्यवहार समझ लिया। लेकिन फिर उसे याद आया कि कैसे अस्पताल में पूनम की चाची पूनम को भला-बुरा कह रही थी और कैसे बेहोश पड़ी पूनम को छोड़कर वे दोनों चले गए थे।

अभी तक अंबुज पूनम के चाचा-चाची को ही बुरा समझता था, लेकिन इस घटना के बाद उसे लगा कि पूनम के स्वभाव में भी कहीं-न-कहीं धृष्टता अवश्य रही होगी।

जैसा पूनम ने चाहा वैसा ही हुआ। चाचा की दुकान से बहुत अधिक आमदनी तो थी नहीं, जो थी वह उन्होंने बता दी। एक कमरे का जो किराया

मिल रहा था वह भी बताया। तय हुआ कि चाचा हर माह पूनम को चार हजार रुपए देंगे। चाचा ने चुपचाप बिना किसी हील-हुज्जत के यह बात मान ली। यद्यपि उनके लिए यह मुश्किल था। आमदनी बहुत अधिक न थी, ऊपर से दो बच्चों की पढ़ाई का बोझ।

चाची भुनभुनाई, लेकिन चाचा ने चुप करा दिया।

'भाई साहब जीवित होते तो तब भी हमारा हिस्सा आधा ही होना था।' सावित्री को समझाया उन्होंने। सावित्री चुप हो गई, लेकिन पूनम को हमेशा के लिए मन से निकाल दिया।

पूनम खुश थी, उसकी आमदनी बढ़ गई और साथ-ही-साथ उसके सपनों की उड़ान भी ऊँची हो गई। वह जीवन में तरक्की करना चाहती थी।

कुछ वर्ष और बीत गए। पूनम ने नौकरी के साथ-साथ अपनी पढ़ाई जारी रखी। उसके मन में सपने थे, उड़ान थी। तलाश थी तो एक अदद संभावना की। वह कोशिशें कर रही थी और इस सब में उसका मददगार बना अंबुज।

सबकुछ ठीक ही चल रहा था। अपने-अपने स्थान पर अपनी-अपनी जिजीविषा को लिये सभी लोग प्रयत्न कर रहे थे। पूनम की उम्र बढ़ रही थी, इसलिए अंबुज आश्रम की संचालिका को पूनम के लिए उचित रिश्ते की तलाश हेतु भी कह चुका था, लेकिन पूनम न मानती थी। जब तक जीवन में कुछ अच्छा, कुछ सार्थक न पा ले तब तक विवाह करने की उसकी इच्छा न थी। और न ही उसकी जिंदगी में दादी से सुनी कहानियों वाला राजकुमार आया था।

❖ आठ ❖

सबकुछ सामान्य चल रहा था। रामनाथजी और उनकी पत्नी बेटे की प्रगति से प्रसन्न थे। अब रामनाथजी ने व्यापार से अपना ध्यान हटाकर प्रभु स्मरण और जनसेवा में लगाना आरंभ कर दिया।

अंबुज और वर्षा की दो प्यारी बेटियाँ दादी के लिए जी बहलाने का साधन थीं। वर्षा खुश थी, सारा घर सँवार दिया था उसने।

लेकिन ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था शायद। होनी और परिस्थितियाँ इनसान के सपनों को कभी-कभार मटियामेट कर देती हैं। इनसान कुछ भी कर ले, लेकिन इसे टाल नहीं सकता। ऐसी ही एक घटना इस हँसते-खेलते परिवार के लिए दु:खों का पहाड़ लेकर आ गई, जिसने सबको हिलाकर रख दिया।

अंबुज और वर्षा एक विवाह समारोह में शामिल होने शहर से बाहर गए थे। दोनों बेटियों के इम्तिहान सिर पर थे तो उन्होंने आने से मना कर दिया और दादा-दादी के साथ घर पर ही रह गईं।

अगले ही दिन अंबुज को एक आवश्यक मीटिंग में भाग लेना था, इसलिए उसने रात को ही वहाँ से चलने की ठानी। वर्षा का मन नहीं था रात के एक बजे निकलने का। मार्ग में दो-तीन किलोमीटर का बीहड़ जंगल भी था, जिसमें कई वारदातें हो चुकी थीं। लेकिन अंबुज को लौटना था, इसलिए उसने सुरक्षा कर्मचारी को अपने साथ रख लिया था।

'तुम घबराओ नहीं वर्षा, मैं तो न जाने कितनी बार इस रास्ते से आधी रात को आया हूँ।'

अंबुज के आश्वासन और धैर्य के बाद भी वर्षा की आशंका कम न हुई, मन अंदर-ही-अंदर बैठा जाता। उसे स्वयं अपने मन की कमजोरी पर आश्चर्य हुआ। वह इतनी कमजोर तो न थी। अंबुज कई बार काम के लिए बाहर रहते थे और देर रात घर आते थे। जागकर उनकी प्रतीक्षा करती थी, लेकिन कभी भी इस तरह के खयाल मन में न आए। लेकिन आज वह क्यों इतनी भयभीत हो रही है। उसकी स्वयं की समझ में नहीं आया।

मन-ही-मन भगवान् को याद कर वह वहाँ से चल पड़े। आधे से अधिक रास्ता पार हो चुका था। वह घना जंगल भी पार हो चुका था, जिसे लेकर वर्षा के मन में इतना भय समाया हुआ था।

'आ गए न हम जंगल से सही सलामत बाहर। तुम तो बेकार में ही डर रही थी।' अंबुज ने चुटकी ली तो वर्षा मुसकरा दी।

लेकिन होनी को तो कुछ और ही मंजूर था। जिस खतरे का आभास कर वर्षा ने चिंता जाहिर की थी, उससे तो वे बाहर निकल आए थे, लेकिन आसन्न विपदा उनकी प्रतीक्षा कर रही थी।

उस घोर तिमिर में आगे से आने वाले वाहनों की तीखी हेडलाइट ड्राइवर की आँखों में पड़ती तो एक क्षण को तो वह अंधा हो जाता। गाड़ी की गति धीमी कर बगल से गाड़ी निकाल लेता। ड्राइवर पिछले कई वर्षों से अंबुज के साथ था। गाड़ी चलाने में कुशलता, मन में धैर्य, गलती होने पर तुरंत क्षमा माँग लेना, ऐसे ही कुछ गुण थे उसमें, जिसने अंबुज और उसका साथ वर्षों तक बनाए रखा।

लेकिन जब समय बुरा हो तो कुशल-से-कुशल व्यक्ति भी गलती कर बैठता है। एक हलके से मोड़ पर तीव्र गति से आते ट्रक की हेडलाइट आँखों में पड़ी, हड़बड़ाया ड्राइवर गाड़ी की गति धीमी न कर पाया। ये भी न देख पाया कि वहीं पर सरिया से लदी एक ट्रैक्टर ट्रॉली खड़ी है। तेज गति से चली आ रही कार का अगला हिस्सा ट्राली में समा गया। बाईं

ओर बैठे सुरक्षाकर्मी और वर्षा ने तो घटनास्थल पर ही दम तोड़ दिया और ड्राइवर व अंबुज बुरी तरह घायल हो गए। वे दोनों भी बेहोश पड़े थे। अंबुज को तो पता भी न चला कि उसका हाथ थामे रखने वाली वर्षा उसे छोड़कर चली गई है। रात्रि के घोर अंधकार में किसी को उस दुर्घटना का जल्दी से पता भी न चला।

माता-पिता राह देख रहे थे। अंबुज ने रात ही लौट जाने को कहा था। जानकी की थोड़ी देर आँख लगती, फिर वह हड़बड़ाकर उठ बैठती। ऐसे ही सुबह के चार बज गए। रामनाथजी से अब न रहा गया तो उन्होंने पुलिस को फोन किया। वे तुरंत सक्रिय हो गए। रास्ते में पड़नेवाले सभी थानों को सूचित किया। तब जाकर पाँच बजे तक इस हादसे का पता चल पाया।

आनन-फानन में अंबुज अस्पताल और वर्षा की मृत देह घर लाई गई। मरते समय भी अंबुज का हाथ अपने हाथ में थाम लिया था वर्षा ने। ठंडी अकड़ गई हथेली को छुड़ाने में मशक्कत करनी पड़ी पुलिस को। इस सबसे अनजान अंबुज मौत से जूझता अस्पताल में पड़ा था।

वर्षा की देह घर आई तो घर पर कोहराम मच गया। दोनों बेटियों का तो रो-रोकर बुरा हाल था। घर में इतनी भीड़ हो गई, मानो पूरा शहर ही उमड़ आया हो। सबकी आँखों में आँसू थे। इतने वर्ष के व्यावसायिक जीवन में अंबुज ने भले ही अपने पिता की भाँति पैसा अधिक न कमाया हो, लेकिन इनसान इतने कमाए थे कि जीवन के किसी भी क्षण आवश्यकता हो तो कई लोग खड़े हो जाएँ और उसकी यही कमाई आज दृष्टिगोचर हो रही थी। जहाँ तक भी नजर जाती, आँखें पोंछते नर-नारी ही दिखाई देते। जितनी भीड़ घर पर थी उतनी ही अस्पताल में भी थी। जो भी सुनता दौड़ा चला जाता।

लंबे समय तक घायल पड़े रहने के कारण अंबुज के शरीर से बहुत खून बह गया था। खून की आवश्यकता थी उसे तुरंत। यह जानते ही वहाँ खून देने वालों की लंबी कतारें लग गईं। हर किसी में होड़ थी कि उनके

शरीर में बहने वाला रक्त किसी तरह अंबुज को जीवन दे सके।

ट्रैक्टर में सरिया भरे होने के कारण वर्षा की देह क्षत-विक्षत हो चुकी थी, लेकिन न जाने किस दैवी चमत्कार से उसके चेहरे पर खरोंच भी न आई; शांत, स्निग्ध, चेहरा अभी भी मुसकराता प्रतीत होता। उसे दुल्हन की तरह सजाकर उसकी अंतिम यात्रा निकली तो सिसकियों के स्वर तीव्र रुदन में बदल गए। चारों ओर हाहाकर था। देवता समान अंबुज पर ये कैसी विपत्ति टूट पड़ी, यही सबके मन में था। उस बेचारे ने तो भूल से भी कभी किसी का बुरा नहीं किया, फिर उसके साथ में ये ज्यादती क्यों? कुछ लोग इसे पूर्वजन्म के कर्मों का फल मानते, तो कुछ भगवान् की मरजी।

शमशान घाट पर जब बड़ी बेटी तुहिना ने वर्षा की चिता को अग्नि दी तो माहौल एक बार फिर गमगीन हो उठा। धैर्यवान रामनाथजी भी अपने आँसू न रोक पाए। फूट-फूटकर रो पड़े। पहली बार उस लौहपुरुष की आँखों में किसी ने आँसू देखे थे।

वर्षा तो उस दर्द से उसी क्षण मुक्ति पा गई थी, लेकिन अंबुज? वह तो जूझ रहा था। तीन दिन हो चुके थे, दो शल्यक्रियाएँ हो चुकी थी, लेकिन उसकी हालत में कोई अंतर नहीं था। संयोग से पूनम भी उसी अस्पताल में नर्स थी। अंबुज को इस स्थिति में वहाँ लाया गया तो वह काँप उठी। अस्पताल प्रशासन से विनती कर अपनी ड्यूटी अंबुज के साथ लगवा ली।

डॉक्टर दवा कर रहे थे तो लोग दुआ। और इन्हीं दुआओं का असर था कि मौत के मुँह में गए अंबुज को डॉक्टर वहाँ से खींच लाए। शरीर के घाव भर रहे थे, लेकिन मानसिक स्थिति ठीक न थी। कभी भी, कुछ भी बोलने लगता, किसी को पहचानता, किसी को नहीं।

माता-पिता उसके पास होते, बच्चे पास होते, लेकिन वर्षा न दिखाई देती। निगाहें पूरे कमरे में उसे तलाशती, वह कहीं न दिखती तो उनसे पूछता। माँ किसी तरह अपने आँसुओं को आँखों में जज्ब करती और बताती कि वह भी उसी की तरह घायल है।

क्या इतनी ज्यादा घायल है कि मैं उससे मिल भी नहीं सकता?

इस सवाल का जवाब किसी के पास न था, इसलिए चुप्पी साध जाते।

'तुम ठीक हो जाओ फिर ले चलेंगे उसके पास।' जानकी ने कह तो दिया, लेकिन आँखों के पोरों तक वेग से बहने को आतुर आँसुओं को रोकने के लिए पूरी शक्ति लगानी पड़ी।

समय का पहिया थोड़ा ओर घूमा अंबुज की स्थिति अब धीरे-धीरे सामान्य हो रही थी, लेकिन किसी मानसिक आघात को सहने की स्थिति में वह अब भी नहीं था। ऊपर से वर्षा की अनुपस्थिति उसकी पीड़ा को और बढ़ा जाती। उसके इस प्रश्न पर सबके कतराने से उसे लगने लगा था कि कुछ तो ऐसा है, जो ठीक नहीं है।

'पूनम, तुम तो बताओ वर्षा कैसी है? कोई मुझे उसके बारे में क्यों नहीं बताता? पूनम से बच्चों जैसी जिज्ञासा से अंबुज ने पूछा तो पूनम की आँखें भर आईं, लेकिन ऐसे समय में आँसू बहाने की इजाजत न थी। पूनम ने काम के बहाने मुँह फेर लिया।

'कुछ पूछ रहा हूँ मैं? क्या हुआ वर्षा को?' पूनम को झिंझोड़ते हुए अपेक्षाकृत कुछ तेज स्वर में अंबुज ने पूछा।

पूनम ने उसका हाथ थाम लिया। क्या जवाब दे वह अंबुज की उस बात का? दर्द की तीखी लहर उसकी नस-नस में समा गई। कुछ दूर यूँ ही अंबुज का हाथ पकड़े बैठी रही। फिर एकाएक तेजी से उठी और कमरे में पड़े सामान को यूँ ही ठीक करने लगी। अंबुज की समझ में नहीं आया कि पूनम को अचानक ही यह क्या हो गया? किसी दवाई लाने के बहाने से वह बाहर निकल गई। दरवाजे से बाहर निकलते ही मुश्किल से जज्ब किए आँसुओं की धारा फूट पड़ी। मन के गुबार ने आँसुओं की राह पकड़ बोझ हलका किया, कमरे में वापस आई तो अंबुज गहरी निद्रा में था।

लगभग दो माह का वक्त अस्पताल में बिताने के बाद अंबुज घर लौटा। दो माह जैसे दो सदियाँ बीत गई हों। जीवन भर के दर्द जैसे इन्हीं दो महीनों में समा गए थे, ऊपर से वर्षा की अनुपस्थिति ने दर्द को और अधिक बढ़ा

दिया था, लेकिन वह कहाँ जानता था कि अभी इससे भी बड़ा दर्द उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। शरीर के घाव भरने के साथ-साथ उनका दर्द भी कम हो रहा था, लेकिन अब उस दर्द का क्या, जो उसके मन पर घाव देने वाला था।

'वर्षा घर पर होगी या अस्पताल में?' उसने अपने आप से प्रश्न किया।

'जिस भयावह दुर्घटना ने उसकी हड्डी-पसली को चूर-चूरकर रख दिया था, उसने वर्षा की क्या हालत की होगी? कहीं वह भी उसी की तरह...।' उसके मन में खयाल आया।

'नहीं-नहीं, उसकी तरह नहीं।' अपने मन में आए खयाल से वह स्वयं ही डर गया। उसकी स्थिति तो अभी अगले कुछ माह तक बिस्तर से उठने की न थी। डॉक्टर ने तो अभी घर जाने से भी मना किया था, लेकिन अंबुज न माना। शरीर में पट्टियाँ, पैरों में प्लास्टर, मानसिक संताप से ग्रस्त अंबुज बिना सहारे के उठ-बैठ पाने लायक भी न था। इसलिए नर्स की सहायता तो आवश्यक ही थी।

अंबुज घर आ रहा है। सभी लोगों को प्रतीक्षा है। माता-पिता और दोनों बेटियाँ अस्पताल से उसके साथ आ रहे हैं। घर के नौकर-चाकर बेसब्री से अपने मालिक के घर आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

व्हील चेयर पर बैठे अंबुज को सबसे पहले पूजागृह ले जाना चाहा जानकी ने। यह गलत भी न था। धर्मपरायण जानकी सुख के क्षणों में भी कभी ईश्वर को स्मरण करना न भूली थी और पिछले दो माह से तो उसका पूरा समय सिर्फ ईश्वर की पूजा और अंबुज के पास अस्पताल में ही व्यतीत हो रहा था।

लेकिन यह क्या? पूजा गृह में प्रवेश करते ही अंबुज ने जैसे ही वहाँ पर स्थापित मूर्तियों और तसवीरों की ओर देखा, उसकी अश्रुधारा बह निकली पूरा शरीर काँपने लगा। अंबुज की यह हालत देख सभी डर गए। सूर्य उगने से लेकर अब तक अंबुज के आने की तैयारी में लगे उन लोगों को तो यह याद ही न रहा कि पूजागृह में एक ओर उनके पितरों के साथ-साथ

वर्षा की भी फूलमाला चढ़ी तसवीर रखी है। अब अंबुज की समझ में आया कि वर्षा कहाँ है? अब पता चला कि सभी लोग उससे इतने दिनों से क्या छिपा रहे थे। सत्य को एक दिन तो सामने आना ही था, लेकिन इस रूप में? ऐसा किसी ने न सोचा था। उसका मन रो उठा। यकीन न आया कि वर्षा उसे छोड़कर सदा के लिए जा चुकी है।

घर के कोने-कोने में वर्षा की यादें बिखरी पड़ी थीं। जिधर नजर जाती वहीं उसे वर्षा खड़ी दिखलाई देती। लगता जैसे उसके शरीर का महत्त्वपूर्ण अंग उससे सदा के लिए जुदा हो गया है। कैसे जीएगा वह वर्षा के बिना और जीएगा भी किसके लिए? क्या रह गया है अब उसकी जिंदगी में? दिन-रात वह इन्हीं सवालों का जवाब ढूँढ़ता रहता।

'बेटा धैर्य रखो, वर्षा नहीं रही, इस बात को तुमसे ज्यादा दु:ख हमें है। लेकिन प्रलाप और विलाप करने से तो वह वापस नहीं आएगी। तुम्हें अब जीना है अपनी बच्चियों के लिए।' माँ समझाती। ठीक ही तो कह रही थी वह, तुहिना और तृष्णा के रूप में वर्षा का अंश ही तो सामने था।

उसे याद आता वह मनहूस दिन, साथ ही याद आती वर्षा की आकुलता। अधिकांशत: धैर्य धारण कर रहने वाली वर्षा उस दिन कितनी आकुल थी। वह किसी भी हालत में उस काली रात को वापस न आना चाहती थी। काश! अंबुज ने उसकी बात सुनी होती तो यह हादसा न होता।

अंबुज की दशा देखकर जानकी और रामनाथ दोनों खून के आँसू रोते। और बिस्तर पर पड़ा अंबुज घंटों छत को निहारता न जाने क्या सोच रहा होगा।

'माँ मुझसे गलती हो गई, भीषण गलती हो गई, अगर उस रात मैं वर्षा की बात सुन लेता तो वह आज हमारे बीच होती।' अंबुज उस मनहूस दिन को बार-बार याद करता और बेचैन हो उठता। वर्षा के अंतिम दर्शन भी न कर पाने के मलाल ने उसके दु:ख को दोगुना कर दिया।

अस्पताल में रहते हुए पूनम द्वारा की गई सेवा-सुश्रुषा से प्रभावित

होकर जानकी अंबुज की देखभाल के लिए पूनम को ही घर पर ले आई। पूनम स्वयं भी तो यही चाहती थी, उसे तो मन माँगी मुराद मिल गई, नौकरी तो फिर भी मिल जाती, लेकिन जिस व्यक्ति ने उसके जीवन को ही बदल दिया हो, उसकी सेवा का सुअवसर कहाँ मिलता। अंबुज के चारों तरफ वर्षा से जुड़ी स्मृतियाँ फैली थीं। उसकी अनुपस्थिति से सूने हुए घर में अंबुज को अवसाद ने घेर लिया। ऐसे समय में पूनम के सामने कई चुनौतियाँ थीं।

अंबुज को सिर्फ शारीरिक तौर पर नहीं, बल्कि मानसिक रूप से भी मदद की आवश्यकता थी। दुर्घटना में लगे घाव तो एक दिन ठीक हो ही जाते, लेकिन वर्षा की असमय मौत ने मन पर जो घाव दिया था, उसे कैसे भरा जाता।

पूनम यद्यपि उससे बहुत छोटी थी, लेकिन अवसाद की स्थिति में अंबुज उससे भी छोटा हो जाता। कभी छोटे बच्चे की तरह सँभालना पड़ता उसे। कभी इतना गुस्सा कि शरीर पर लिपटी पट्टियों को भी उतारने को तत्पर, पूनम की यह अग्निपरीक्षा थी। उसके नर्सिंग के प्रशिक्षण व अनुभव दोनों की असली परीक्षा तो अब हो रही थी और इसमें उत्तीर्ण होने की पूनम जी-जान से प्रयास कर रही थी।

काम अधिक और करनेवाली अकेली पूनम। अंबुज को तो चौबीसों घंटे सहारे की आवश्यकता थी। पूनम के चेहरे की थकान सभी कुछ बयाँ करने के लिए पर्याप्त थी।

रात में अंबुज ठीक रहता और शांति से नींद ले पाता तो पूनम को भी आँखें झपकाने का मौका मिल ही जाता, लेकिन यदि अंबुज की बेचैनी बढ़ती तो कभी-कभी पूरी रात आँखों में ही कट जाती।

जानकी का वृद्ध शरीर भी इतना सक्षम न था कि वह अंबुज की मदद कर पाती।

घर आए हुए अभी एक सप्ताह ही हुआ था कि एक रात अंबुज की बेचैनी बढ़ गई, अर्द्धरात्रि का समय, रामनाथ और जानकी अपने कमरे में

सो रहे थे और दोनों बच्चे अपने कमरे में। दिन भर के काम-काज से थककर घर के नौकर-चाकर भी अपने-अपने कमरों में गहरी निद्रा में मग्न थे। दिन भर अंबुज की स्थिति सामान्य ही रही थी, तो पूनम को रात में थोड़ा सा आराम मिलने का आभास था।

कमरे में ही एक कोने पर रखे तख्त पर पूनम लेट गई, आँखों में निद्रा ने दस्तक देनी आरंभ ही की थी कि अंबुज के कराहने के स्वर ने नींद को आँखों से दूर कर दिया।

पूनम उठ खड़ी हुई, अंबुज गहरी नींद में था या बेहोशी में इसका पता न चल पाया। अंबुज के कराहने के स्वर से ही उसके दर्द की तीव्रता का अहसास पूनम कर सकती थी। उसने अंबुज का माथा छूकर देखा तो वह तप्त अंगारे के समान जलता प्रतीत हुआ।

पूनम के स्पर्श से अंबुज के शरीर में हलचल सी हुई। उसने धीरे से आँखें खोलीं, ऐसा लगा जैसे आँखों में रक्त उतर आया हो। रात्रि बल्ब के प्रकाश में पूनम को अंबुज के नेत्र दहकते कोयले सदृश नजर आए।

कुछ देर तक अंबुज के नयन पूनम को अपलक निहारते रहे और फिर न जाने किस आवेश में अपने जलते हाथों में पूनम के दोनों हाथों को ले लिया।

'वर्षा, कहाँ चली गई थी, तुम जानती हो मैं कितना परेशान था। वादा करो अब मुझे छोड़कर कहीं नहीं जाओगी।' अस्फुट स्वर में निकले इन शब्दों के साथ ही अंबुज ने आँखें मूँद लीं। उसके चेहरे पर दर्द के स्थान पर शांति के भाव थे। रात भर पूनम की हथेलियाँ अंबुज के गरम हाथों के बीच पसीजती रहीं। अंबुज के गहरी नींद सो जाने के बाद भी पूनम अपने हाथों को अलग न कर पाई।

प्रात: पाँच बजे उठ जानेवाली जानकी अंबुज के कमरे में आई तो पूनम को कुरसी पर बैठे पाया। उसका सिर अंबुज के बिस्तर पर था और वह गहरी नींद सो रही थी।

स्नेह विजलित हो उसने पूनम के सिर पर हाथ फेरा, तो पूनम की

नींद खुल गई। अंबुज का एक हाथ अभी भी उसकी बाँह के ऊपर था।

'रात को सर की तबीयत…। आप सो रहे थे उठाना नहीं चाहा' थूक निगलकर उसने गला तर किया, धीरे से अंबुज के हाथ से अपनी बाँह को अलग किया।

पूनम की घबराहट को जानकी ने सामान्य ही लिया, लेकिन उसे लग गया कि अंबुज को सँभालना पूनम के अकेले के बस का नहीं, थक जाती है वह दिन भर और फिर रात को भी सोने को नहीं मिलता।

उन्होंने सोच लिया कि सुकन्या को पूनम की मदद के लिए कहेगी।

धीरे-धीरे पूनम घर में सबसे घुल-मिल गई, एक चीज और जिसने पूनम को प्रभावित किया वह थी वहाँ का ऐश्वर्य, ऐसा रहन-सहन, उनका वैभव उसने पहली बार देखा था। यों तो पूनम पहले भी कई बार यहाँ आई थी, लेकिन बाहर से ही वापस जाना हुआ। इस बार इस घर के आंतरिक वैभव को देखने का अवसर उसे मिला। बचपन में दादी के मुँह से सुनी राजमहल की कहानी जीवंत हो उठी, ऐसा ही होता होगा राजकुमार का राजमहल। ऐसे राजमहल की कल्पना क्यों की होगी उसकी दादी ने उसके लिए। और यदि उसके माता-पिता जीवित होते तो क्या ऐसा महल दे पाते उसे? कई प्रश्न बार-बार मन में आते।

जानकी ने भी उसे एक नर्स की तरह नहीं, बल्कि घर के सदस्य की तरह रखा। अंबुज धीरे-धीरे उसके संरक्षक की जगह उसका मित्र सा लगने लगा और यही समय की आवश्यकता भी थी। अंबुज स्वस्थ होने लगा और उसके घाव भी भरने लगे, लेकिन जो घाव उसके मन पर पड़े थे उन्हें भला कोई कैसे भर सकता था? यद्यपि घर के सभी सदस्यों और स्वयं पूनम ने भी इसके लिए अथक प्रयास किया, लेकिन जो खालीपन अंबुज के जीवन में आ गया था, उसकी भरपाई होना इतना आसान नहीं था।

❖ नौ ❖

उसी कोठी के आउट हाउस में रहती थी सुकन्या। जीवन में बहुत कुछ खोकर भी इस परिवार के सान्निध्य में संतुष्ट थी वह।

लंबी बीमारी के बाद सुकन्या की माँ जब स्वर्ग सिधारी, उस समय वह मात्र चार वर्ष की ही थी। एक निजी स्कूल में हिंदी के शिक्षक उसके पिता मामूली वेतन पाते। पत्नी के इलाज में जमा पूँजी तो जाती रही, उलटा कर्जा और सिर पर चढ़ गया। सुकन्या की उम्र को देखते हुए कई लोगों ने उन्हें विवाह की सलाह दी, लेकिन 'सौतेला' शब्द दिमाग के अंदर कुछ इस तरह बैठ गया था कि वे राजी न हुए। घर-गृहस्थी के काम-काज से लेकर नन्ही सुकन्या की सारी जिम्मेदारी अब उनके सिर पर थी। भोजन तो किसी तरह उसे खिला ही देते, लेकिन माँ के रहते सुंदर तेल लगे बालों में रिबन के फूलों से सजा सिर अब किसी समस्या की तरह प्रतीत होता, लेकिन मास्टरजी को विवाह न करना था, तो अपनी बात पर वे अडिग ही थे।

सुकन्या भी उन्हीं के साथ स्कूल जाती और छुट्टी होने पर उनके साथ ही घर आती। सुबह का बना खाना गरम किया जाता और उसी से दोनों की क्षुधा शांत होती। अस्त-व्यस्त हुए घर और उनकी आँख की पुतली सुकन्या की स्थिति को देखते हुए उन्हें घर में गृहिणी की कमी महसूस हुई और अंततः उन्होंने एक उम्रदराज विधवा महिला, जिसका

कोई न था को घर के कामकाज के लिए रख ही लिया। सुकन्या उसे अम्मा कहती, मास्टरजी उसे दीदी। लोगों ने बहुतेरी बातें बनाईं, मास्टरजी को समझाया, 'कहाँ दूसरे घर की औरत को ऐसे ही घर में रख लिया आपने,' लेकिन मास्टरजी ने मानो कानों में रूई ठूँस ली थी।

अम्मा ने घर में प्रवेश करने के कुछ दिन बाद से ही घर और सुकन्या दोनों की दशा बदल दी। मास्टरजी इस ओर से निश्चिंत थे अब, लेकिन सीमित आय और सिर पर चढ़े कर्जे ने उनका दिन का चैन और रातों की नींद छीन ली। दिन-प्रतिदिन तन सूखता जाता और मन पर बोझ बढ़ता जाता।

हिंदी के अध्यापक थे, अन्य आमदनी का भी सहारा नहीं, हिंदी की ट्यूशन भी कौन पढ़ता, फिर भी एक-दो धन्ना सेठों के बिगडैल बच्चों को उन्हीं के घर पर पढ़ाने का काम सिर पर लिया। 'जैसा होगा अन्न, वैसा होगा मन' यह कहावत हमारे पूर्वजों ने यूँ ही नहीं बनाई होगी। गरीबों का खून चूसकर कमाए गए इस धन का अन्न खा बच्चे भी कुसंस्कारित न होते तो और क्या होते।

पिता को धन कमाने से फुरसत नहीं, तो माता को नई-नई गड़ंथ के जेवर बनाने में ही आनंद, बच्चे पलते नौकरों के भरोसे, ऐसे में ये बच्चे कई बार मास्टरजी का अपमान कर डालते। उनकी वेश-भूषा सिर के पीछे लटकी लंबी सी चोटी उनके लिए उपहास का विषय होती, लेकिन पंडितजी अपमान का ये गरल बिना किसी शिकन के सहन कर जाते।

लेकिन दुर्दिनों ने अभी भी पीछा न छोड़ा था। सुकन्या अब चौदह वर्ष की थी और नवीं कक्षा की विद्यार्थी, उम्र के साथ-साथ उसका सौंदर्य भी उसी गति से बढ़ रहा था। लंबी छरहरी काया, गोल-मटोल चेहरा, उस पर सुतवाँ नाक, बातें करती आँखें, किसी का भी मन मोह लेती। घर में अनुशासन सहित अम्मा का प्यार और स्कूल में पिता की छत्रछाया, सुकन्या रूप के साथ-साथ गुणों में भी अव्वल ही थी।

परंतु एक रात मास्टरजी के सीने में तेज दर्द उठा, लगा जैसे किसी

ने हृदय मुट्ठी में जकड़ लिया हो। श्वास तन का साथ छोड़ने को आतुर थीं, कृष्ण पक्ष की रात्रि के एक बजे अम्मा बुलाती भी तो किसे। मास्टरजी कभी बेचैनी से सीने को पकड़े इधर-उधर घूमते तो कभी निष्क्रिय लेट जाते। अम्मा शर्म-हया की दीवार तोड़ उनकी छाती बाम से मलती, पौ फटने की प्रतीक्षा करती रही।

सुबह छह बजे किसी तरह से अस्पताल पहुँचाया गया, लेकिन तब तक देर हो चुकी थी।

'दिल का दौरा पड़ा है इन्हें, तभी अस्पताल लेकर आते तो कुछ हो सकता था, हम कोशिश कर रहे हैं, लेकिन…।' डॉक्टर के इसी लेकिन ने अम्मा और सुकन्या दोनों को हताश कर दिया।

दो घंटे बाद डॉक्टरों ने मास्टरजी के प्राण पखेरू उड़ने की खबर अम्मा और सुकन्या को सुना दी। साँसों ने अंदर से खोखले हो चुके शरीर का साथ छोड़ दिया था। अम्मा को विश्वास न होता कि सुकन्या की किस्मत के साथ ईश्वर इतना क्रूर अन्याय कर सकता है?

इसके साथ ही अम्मा को अपनी किस्मत की याद आई। सोलह वर्ष में विवाह, सत्रह वर्ष की विधवा वह मायके लौट आई थी। पिता का स्वर्गवास हो चुका था और माँ अपने तीन पुत्रों और बहुओं पर आश्रित थी। अम्मा का उस घर में पुनरागमन भाभियों के साथ-साथ भाइयों को भी नागवार गुजरा, लेकिन दुनिया की शर्म से बाहर-बाहर चुप ही रहे। माँ के लिए जीवित रहने तक तो भाभियों के ताने सुनने की शक्ति रही, लेकिन उसके बाद जहाँ ताने और अत्याचार बढ़े वहीं सहन शक्ति भी कम होती गई।

बड़ा भाई जो उससे थोड़ा सा लगाव रखता था, लेकिन पत्नी के डर से खुलकर कुछ न कह पाता, उसे पास के ही मंदिर में रहने की सलाह दी।

'मंदिर की साफ-सफाई रखना। दो-तीन माइयाँ और रहती हैं वहाँ, साथ ही मंदिर का महंत और एक-दो छोटे पुजारी। मंदिर में ईश्वर का

जो प्रसाद और चढ़ावा आता है, उसके एक हिस्से में तेरा खाना-पीना चल जाएगा।

और वह अपनी दो-चार कपड़ों की पोटली उठाए मंदिर में आ गई।

सुबह-शाम ईश्वर भजन और मंदिर के रख-रखाव के कार्य में अम्मा रम गई। घर की गाली-गलौज से तो मुक्ति मिली और ईश्वर चरणों में जीवन सफल हो गया, लेकिन ये शांति, धर्म आस्था भी जैसे एक धोखा मात्र रहा उसके लिए। एक रात अपने शरीर पर किसी अपरिचित स्पर्श को महसूस कर वह चौंककर उठ बैठी। घोर अंधकार में चेहरा तो न पहचाना, पर उसके उठ बैठने से उस व्यक्ति ने जो कहा वह स्वर अपरिचित न था।

'महंतजी आप! आप इस समय यहाँ?'

'मैं कभी भी कहीं भी जा सकता हूँ, मालिक हूँ यहाँ का।'

'मालिक तो ईश्वर है, हम सब यहाँ पर उसके सेवक मात्र हैं।' कहना चाहती थी वह, लेकिन मुँह से बोल न फूटा। डर के मारे पैर सिकोड़कर बैठ गई।

इस स्पर्श का मतलब खूब समझती थी वह। आखिर एक वर्ष तो पति के साथ गुजारा था उसने। उसके बाद भी उसको लावारिस समझ गिद्ध दृष्टि से ताकने वालों से किसी तरह अपने आपको बचाकर रखा था अब तक, लेकिन हे ईश्वर! उसके दरबार में ये घोर अनर्थ।

'मैं चिल्लाऊँगी।' किसी तरह उसके मुँह से निकला।

'तो चिल्ला जितना चिल्ला सकती है, कोई नहीं तेरी सुननेवाला, आज जा रहा हूँ, लेकिन एक दिन तो तुझे मेरी होना ही होगा। अपनी मरजी से मान ले तो ठीक, वरना...।' और वह अँधेरे में ही कहीं अदृश्य हो गया।

अम्मा को काटो तो खून नहीं, सारी रात वैसे ही पैर सिकोड़कर बैठी रही।

'तेरी तबीयत तो ठीक है आज। सुस्त सी लग रही है।' उसको

अनमना देख दूसरी माई ने पूछा। उससे लगभग दस वर्ष बड़ी होगी वह और पिछले बारह-तेरह वर्षों से इसी मंदिर के परिसर में रह रही थी वह।

'हाँ ठीक है।' उसने धीमे स्वर में जवाब दिया।

'महंत आया था तेरे पास?'

उसका प्रश्न सुन अम्मा चौंकी। इसे कैसे पता? उसने तो इस बारे में किसी से बात भी न की थी। उसे तो स्वयं से नफरत हो रही थी यह सोचकर कि अवश्य उसी में ऐसी कोई कमी होगी, जो मंदिर का इतना बड़ा महंत रात को उसके पास···छिह।

वैसे भी बचपन से यही सुनती आई थी कि पुरुष यदि ऐसा-वैसा कुछ करता है या कहता है तो कहीं-न-कहीं उसमें गलती महिला की ही होती है। यदि वह संयम से रहे तो किसी की हिम्मत नहीं हो सकती, यानी उस पुरुष की दुष्चरित्रता का आरोप भी महिला के सिर पर।

'वह सबके साथ यही करता है।' उसकी आँखों में प्रश्नचिह्न देख वह स्वयं ही बोल उठी।

'क्या करें मजबूरी है, सब सहन करना पड़ता है। यहाँ तो एक ही है, बाहर निकल जाओ तो दस हैं। तू ही बता क्या यह ज्यादा ठीक नहीं?' बेचारगी की यह एक नई सीमा थी।

लेकिन अम्मा से यह बेचारगी सहन न हुई कपड़ों की पोटली को वहीं छोड़ भाग खड़ी हुई। बड़ा भाई गाँव के बाहर खेत में ही मिल गया।

'मार डाल, काट डाल, यहीं खेत में गाड़ दे, लेकिन मंदिर वापस न जाऊँगी।'

भाई ने क्या समझा क्या नहीं, लेकिन वापस जाने को जोर न किया। तीनों भाई में सलाह हुई।

'हम तो बाहर रहते हैं, हमारी बीवियाँ इसे चैन से रहने न देंगी, क्यों न घर से थोड़ी दूर एक खेत में छोटी सी झोंपड़ी बनाकर दे दें, अपना खाएगी और रहेगी।' बड़े ने ही सलाह दी।

और तब से अम्मा उसी झोंपड़ी में दिन काट रही थी। संयोग से

मास्टरजी इसी गाँव के रहनेवाले थे और अम्मा की पीड़ा भी उन्हें समझ में आती। सुकन्या की देखभाल के लिए उससे अच्छा उन्हें कोई न दिखाई दिया। अम्मा के दुर्दिन समाप्त हुए, लेकिन अब यह नई जिम्मेदारी।

अम्मा ने बहुत ठोकरें खाई थी, लेकिन मन में ठान लिया कि सुकन्या की किस्मत अपने जैसी न होने देगी। उसके पिता पढ़ा-लिखाकर उसे अपने पैरों पर खड़े देखना चाहते थे, तो वह भी यही करेगी।

'लेकिन कैसे?' यही यक्ष प्रश्न सामने था। मास्टरजी एक निजी स्कूल के अध्यापक थे, जिसमें न तो पेंशन मिलती थी, न ही कोई जमा पूँजी। अनिवार्य फंड के नाम पर कुछ पैसा इकट्ठा था, सो मिल गया। स्कूलवालों ने सुकन्या की फीस भी माफ कर दी, लेकिन सिर्फ यही खर्चा तो न था, मकान का किराया, खाना-पीना और अन्य खर्चे ये कहाँ से होते।

अम्मा ने हार न मानी। मास्टरजी की पूँजी सुकन्या के नाम से बैंक में जमा की और स्वयं तीन-चार घरों में साफ-सफाई, खाना बनाने का काम करना आरंभ किया। सुकन्या ऐसा नहीं चाहती थी, लेकिन विवश थी। जीवन की गाड़ी चल निकली।

सुकन्या ने दसवीं की, फिर बारहवीं और अब वह कॉलेज में बी. एस.-सी. की छात्रा थी। अम्मा को भी पति-पत्नी दोनों के काम करनेवाले घर में दिनभर बच्चों को सँभालने व भोजन तैयार करने का काम मिल गया। तीन-चार घरों में भटकने से अधिक सुविधाजनक था, साथ ही कॉलेज से वापस आकर सुकन्या पड़ोस के कुछ बच्चों को भी पढ़ा लिया करती।

सुकन्या ने स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। अब वह शिक्षिका बनने का प्रशिक्षण लेना चाहती थी, लेकिन इधर अम्मा की तबीयत बिगड़ने लगी थी। उन्हें अकसर खाँसी रहती। डॉक्टर को दिखाना, वह टाल ही जाती।

'क्या हुआ है बिटिया मुझे, मैं बिलकुल ठीक हूँ, ये खाँसी तो बुढ़ापे का रोग है। शमशान पर जाकर ही खत्म होगी।'

उनकी खाँसी इसकी वजह थी या कुछ और। जिनके यहाँ अम्मा काम करती थी, उन दंपती ने भी उन्हें काम से हटा दिया। बहुत जिद करने पर अस्पताल गई तो एक्स-रे में वही निकला, जिसका शक सुकन्या को आरंभ से था।

'अम्मा अब आप आराम करो। इतने वर्षों तक आपने मुझे पाला, अब मेरी बारी है।'

लेकिन अम्मा को कहाँ चैन से बैठना पसंद था और कुछ नहीं तो घर के काम में ही लग जाती।

'कुछ न होगा मुझे, जब तक तुझे विदा कर तेरा घर न बसा दूँ, तब तक इस दुनिया से नहीं जाऊँगी मैं।' सुकन्या के टोकने पर हँसकर टाल जाती अम्मा।

कॉलेज जाने के स्थान पर अब सुकन्या ने प्राइवेट तौर पर ही एम. ए. की परीक्षा देने की सोची। उसका सारा दिन अब घर की व्यवस्था और आमदनी के लिए संघर्ष करते ही बीतता। अम्मा की दवाइयाँ भी काफी महँगी आतीं, साथ में अच्छी खुराक भी आवश्यक थी।

सुकन्या ने और अधिक ट्यूशन करना आरंभ किया। अपनी पढ़ाई तो जैसे छूट ही गई थी। अम्मा की सेहत में धीरे-धीरे सुधार हो रहा था। जैसे-तैसे सुकन्या प्रथम वर्ष की परीक्षा उत्तीर्ण हो ही गई। अम्मा थोड़ा ठीक हुई तो घर के काम सँभालना फिर से आरंभ किया, लेकिन होनी को आज तक कौन टाल पाया है, जो सुकन्या टाल जाती।

जानलेवा बीमारी से आसन्न मौत के मुँह से तो सुकन्या अम्मा को छुड़ा लाई, लेकिन ऊपरवाले का बुलावा आ ही गया था, उसे टालना किसके वश में था भला। बाजार से सब्जी लेकर आते समय अम्मा वाहन की टक्कर से जमीन पर गिरी, तो फिर कभी न उठी।

इस पूरे संसार में सुकन्या अब नितांत अकेली थी। कई दिनों तक तो वह सदमे से बाहर ही न आ पाई। घर के हर कोने से अम्मा की यादें जुड़ी थीं, खून का रिश्ता न होने के बाद भी यह रिश्ता ऐसा था, जिसे

उससे बढ़कर माना जा सकता। माँ होती तो वह भी तो यही करती उसके लिए, कितना दु:ख झेला उन्होंने अपनी जिंदगी में।

विवाह के बाद ससुराल को अपना घर समझा तो वह भी अपना न रहा, लौटकर आई तो माता-पिता का घर भी पराया हो गया और इस घर में आई तो भी बदकिस्मती ने पीछा न छोड़ा। मास्टरजी की मृत्यु के बाद घरों में चौका-बरतन भी करना पड़ा, लेकिन सुकन्या को कभी बोझ न समझा। अब सुकन्या पढ़ाई पूरी कर नौकरी करती, अम्मा के सुख के दिन आते, लेकिन ऊपरवाले ने अच्छे दिन दिखाने को जीवित ही न रखा।

ऐसे ही अवसाद से जूझते हुए सुकन्या ने एम.ए. भी कर लिया। ट्यूशन के साथ नौकरी ढूँढ़ना भी आरंभ किया, लेकिन यह सब इतना आसान तो न था, और तभी किसी ने उसकी मुलाकात अंबुज से करवाई। सुकन्या में अंबुज को न जाने क्या नजर आया कि आश्रम में रखने के स्थान पर उसे घर ले आया।

सुकन्या अपना सामान ले घर के आउट हाउस में आ गई। अंबुज ने अपनी दोनों बेटियों की जिम्मेदारी सुकन्या को सौंपी। बड़ी बेटी तुहिना तब छह वर्ष की थी और छोटी तृष्णा चार वर्ष की। दोनों बच्चों की पढ़ाई और अन्य छोटे-छोटे कार्यों के अलावा अपने काम से काम रखने वाली व मृदु स्वभाव की सुकन्या को इस बँगले के आउट हाउस की जिंदगी बाहर रहने से अधिक सुरक्षित लगी। जिस जवान लड़की का इस दुनिया में कोई न हो, न जाने कितने लोग अभिभावक बनने के बहाने ही नजदीक आना आरंभ कर देते हैं, लेकिन यहाँ सुकन्या पूरी तरह सुरक्षित थी।

तब से छह वर्ष बीत गए। दोनों बच्चों की आंटी, वर्षा की सहेली व जानकी व रामनाथजी की बेटी बन सुकन्या ने उस घर के आउट हाउस को ही अपना स्थायी निवास बना लिया।

'बेटी कब तक हमारी सेवा करती रहेगी, अब तेरे लिए लड़का ढूँढ़ तेरा घर बसाना हमारी जिम्मेदारी है।' जानकी ने कहा तो सुकन्या के चेहरे

पर कई भाव आकर चले गए। बहुत घुमा-फिराकर लच्छेदार बातें करना उसे न आता।

'अम्मा मैं शादी नहीं करना चाहती, आपके साथ ही रहना है मुझे हमेशा।' नीची निगाहें कर अपने मन की बात कही सुकन्या ने।

सुकन्या बच्चों की जरूरत थी, जानकी की जरूरत थी, उसके जाने से एक खालीपन तो घर में आ ही जाता, इसलिए उसके विवाह की बात टलती ही जाती, स्वयं सुकन्या के कोई निर्णय न लेने से बात दब ही गई। न ही आज तक उसके जीवन में किसी पुरुष ने प्रवेश करने की चेष्टा ही की, आखिर मिलना-जुलना ही कितने लोगों से था उसका। जब पिता की मृत्यु हुई, वह छोटी थी, लेकिन जब अम्मा का साथ भी छूटा तो कई लोगों की अनधिकार चेष्टा उसने महसूस की और अंबुज के घर में आने के बाद उसकी दुनिया वहीं तक सीमित हो गई। बाहर भी निकलना होता, तो कभी वर्षा साथ होती तो कभी जानकी। सुकन्या पर पूरे परिवार का ऐसा विश्वास बना कि कभी दोनों बच्चियाँ भी उसी के साथ बाहर चली जातीं।

इस घर पर हुए इस वज्रपात ने उसके अंतर्मन को तीव्र आघात पहुँचाया। वर्षा यूँ तो उसकी मालकिन थी, लेकिन सुकन्या को छोटी बहन की तरह मानती। पहले से ही कम बोलने वाली सुकन्या और भी अधिक गुमसुम रहने लगी। पूरे घर में ही अब सन्नाटा पसरा रहता।

और पूनम की इस परेशानी के हल के रूप में जानकी को दिखाई दी सुकन्या। हाँ सुकन्या! इस घर को भली-भाँति जाननेवाली सुकन्या, पूनम का हाथ बँटा सकती थी।

'लेकिन वह नर्स नहीं है, वह कैसे...?' पूनम की तुरंत प्रतिक्रिया आई। उसके एकाधिकार में जैसे किसी ने अनधिकृत प्रवेश कर लिया हो।

'बेटी सेवाभाव होने के लिए नर्स होना आवश्यक नहीं। सुकन्या को हम वर्षों से जानते हैं, इस लड़की के जैसे गुण तो लाखों में से एक में होते हैं, तुम्हें भरपूर मदद मिलेगी इससे।'

इस तर्क पर पूनम चुप रह गई, लेकिन मन के किसी कोने में सुकन्या का आना खटक गया।

लेकिन क्यों? ऐसा क्यों लग रहा था उसे। इस घर से अंबुज से आखिर नाता क्या था उसका?

वस्तुतः इस घर के अंदर वह पहली बार आई थी। इस घर के वैभव को, ऐश्वर्य को पहली बार देखा था उसने। यह सब देखकर बचपन में दादी के मुँह से सुनी राजमहल और राजकुमार वाली कहानी जीवंत हो उठी। ऐसा ही होता होगा राजकुमार का महल, लेकिन दादी ने ऐसे महल की कल्पना क्यों की होगी उसके लिए। माता-पिता जीवित होते तो क्या ऐसा सपनों का महल दे पाते उसे? हलकी सी आह निकल गई उसके मुँह से।

इस महल की स्वामिनी न सही, उसके मालिक की सेवा का पूर्ण हक तो अब तक था ही उसे, लेकिन अब उसमें भी सुकन्या रूपी सेंध लग गई।

'किसी मरीज की देखभाल की है कभी!' सुकन्या से उसका सीधा प्रश्न था।

'अम्मा बीमार रही थी, तब उन्हें देखा था, अभी तो ऐसा मौका…।'

'ठीक है, ठीक है, मैं सिखा दूँगी तुम्हें। नर्सिंग का विधिवत् प्रशिक्षण लिया है मैंने।' सुकन्या यूँ तो उम्र में उससे बड़ी ही थी, लेकिन व्यवसाय से उपजा गुरुत्तर भाव पूनम में आ ही गया।

दो लोग हुए तो काम भी बँटा और समय भी, पूनम के काम का बोझ हलका हुआ, लेकिन उसी अनुपात में मन का बोझ बढ़ा। कुछ दिनों तक सुकन्या और पूनम साथ-साथ रहे, जिससे सुकन्या पूनम से आरंभिक स्थिति को सँभालना सीख सके।

अंबुज मन से आहत, तन से आहत, अपना स्वयं का कार्य करने में भी अक्षम। पूनम प्रशिक्षण प्राप्त नर्स थी, बिना किसी झिझक के अंबुज को मदद करती; लेकिन सुकन्या, उसे ऐसा कोई अनुभव न था। इतने

वर्षों से इस घर का हिस्सा होने के बाद भी अंबुज से सिर्फ काम की बात करती थी, ऐसे में पूनम कई बार उसे बुरी तरह झिड़क देती, ऐसा लग रहा था जैसे पूनम उसकी प्रतिद्वंद्वी हो गई हो और हर हाल में उसे नीचा दिखाना चाहती हो।

❖ दस ❖

सुकन्या आउट हाउस में रह रही थी और पूनम अंबुज के कमरे से सटे एक कमरे में। सुकन्या को बहुत असुविधा न हो इसके चलते, जानकी ने उसे भी पूनम के ही कमरे में रहने को कह दिया।

पहले अंबुज की सेवा-सुश्रुषा बँटी अब कमरा भी। पूनम इस चोट से कराह उठी, लेकिन क्या कहती, उसका घर तो था नहीं, वह तो स्वयं अंबुज की तीमारदारी के लिए वहाँ पर थी। मन सुकन्या के प्रति ईर्ष्या से भर उठा और अंबुज और उसके घरवालों के मन के बहुत करीब रहने की इच्छा प्रबल होती गई। इसके लिए उसने जी-जान से अंबुज की सेवा की। वहाँ से समय मिला तो जानकी और रामनाथजी की सेवा में लग जाती, कभी रसोई में पहुँच वहाँ काम करनेवालों की मदद करने लगती।

'तू थकती नहीं है बैटी, जब देखो किसी-न-किसी काम में लगी रहती है।' जानकी ने पूनम से प्यार से पूछा।

'मुझे अच्छा लगता है काम करना।' उसने सिर झुका दिया और कनखियों से सुकन्या की ओर देखा।

कोई भाव न थे सुकन्या के चेहरे पर, वह चुपचाप अंबुज के मुँह पर लगे थर्मामीटर को निकालने के लिए घड़ी की सुई की ओर देख रही थी।

पूनम दोनों बेटियों से भी घुलने-मिलने का प्रयत्न करती, लेकिन

माँ और घर के सदस्यों के बाद यदि वे किसी से मन से जुड़ी थीं, तो वह थी सुकन्या। यों तो वर्षा बच्चे की माँ कम, मित्र अधिक थी; लेकिन उस तक अपनी कोई बात पहुँचाने के लिए बच्चे सुकन्या का सहारा लेते। बड़ी होती बच्चियों को किसी तरह मित्र बनाकर गलत राह पर चलने से रोका जा सकता है, वर्षा बखूबी जानती। इसी का नतीजा था कि कच्ची उम्र की फिसलन भरी राह पर दोनों मजबूती से पैर जमाकर चल रही थीं।

माँ के जाने से पैदा हुए खालीपन को तो वैसे कोई नहीं भर सकता, लेकिन सुकन्या से दोनों बहुत जुड़े थे। सुकन्या को भी जब समय मिलता उनके पास जा बैठती, उनकी स्कूल की बातें करती। परिवार के सभी सदस्यों के मन के करीब होते हुए भी पूनम दोनों बेटियों के मन की थाह न पा सकी और इस कुंठा से उपजे क्रोध की शिकार बनती सुकन्या।

'ये क्या हाल बनाकर रखती हो तुम कमरे का, तुम्हें तो ढंग से रहना भी नहीं आता।'

जल्दी में सुकन्या का तौलिया बिस्तर पर ही पड़ा रह गया था।

वह वहाँ से बाहर आई ही थी कि अंबुज के कमरे से कुछ गिरने की आवाज आई। अंबुज अपने हाथ फैला पानी लेने का प्रयास कर रहा था कि गिलास नीचे गिर पड़ा। पूनम वहाँ पर न थी, बस इसी में ऐसा हो गया।

सुकन्या तो पूनम को बताना चाहती थी, लेकिन चुप्पी साध गई। सुकन्या कम बोलती, अपने काम-से-काम रखती, लेकिन इतनी नादान भी न थी कि पूनम की बातों का अर्थ न समझती। सुकन्या पूनम की आँखों में खटक रही थी, यह वह भी समझती। बस उस दिन से उस कमरे का अधिक प्रयोग बंद कर दिया, उसके पास स्वयं का कमरा तो था ही।

इस बात को बीते अभी चार दिन ही हुए थे कि एक नया हंगामा

हो गया, उस रात पूनम की तबीयत कुछ ठीक न थी, तो सुकन्या अंबुज के साथ रही। सुबह होते ही पूनम को बता वह अपने कमरे में चली गई। थोड़ी देर में बच्चों को स्कूल जाना था और उन्हें नाश्ता करा, तैयार कर भेजने की जिम्मेदारी उसी की थी। वस्तुतः बच्चे उससे इतने घुले-मिले थे कि उसके सिवाय किसी की सुनते ही नहीं।

तुरंत ही नहा-धोकर वह बच्चों के पास पहुँच गई, बच्चे नाश्ता कर ही रहे थे कि एक घरेलू नौकर ने आकर बताया कि अंबुज बिस्तर से गिर पड़ा है। बच्चों को वैसे ही छोड़ सुकन्या उस ओर भागी। दो-तीन लोग उठाकर अंबुज को बिस्तर पर बिठा रहे थे और रामनाथ, जानकी, पूनम सब उसे घेरे खड़े थे, दर्द का एहसास अंबुज के चेहरे पर स्पष्ट दिखाई दे रहा था। दर्द की अधिकता होशो-हवास पर असर डाल रही थी।

आनन-फानन में डॉक्टर भी बुला लिया गया।

'आपको इनका ध्यान रखना चाहिए था, यह सब हुआ कैसे?' डॉक्टर ने अंबुज को दर्द निवारक इंजेक्शन देते हुए पूछा।

कई जोड़ी निगाहें सुकन्या की ओर घूम गईं, लेकिन क्यों? यह सुकन्या को समझ न आया।

'कहाँ चली गई थी बेटी तू, देख अंबुज का क्या हाल हो गया? जानकी ने स्वर को यथासंभव नम्र बनाने का प्रयत्न किया, लेकिन बेटे के दर्द ने कड़वाहट को छिपने न दिया।

'मैं बच्चों को स्कूले भेजने…। पूनम को बताकर…।' अटकते हुए सुकन्या ने बात पूरी की।

'मुझे!' पूनम ने आश्चर्य से कहा और उससे अधिक आश्चर्य सुकन्या को हुआ।

उसे ही वह कहकर गई थी, लेकिन यह मना क्यों कर रही है? क्या उससे ही कोई गलती हुई है।

'आज पूनम अचानक यहाँ न आती तो न जाने क्या हो जाता। आगे ध्यान रखना।' जानकी ने बात को वहीं समाप्त करते हुए कहा।

सुकन्या ने पूनम की ओर देखा, कोई भाव न थे उसके चेहरे पर। उसका ध्यान अंबुज की ओर अधिक था, तो क्या उससे ही गलती हुई है? उसका सिर शर्म से झुक गया।

इस घटना ने इस घर में पूनम की पैठ और गहरी कर दी। और यही पूनम चाहती भी थी। आरंभ में सुकन्या के पीछे पड़ी रहनेवाली पूनम अब उसे बहुत अधिक महत्त्व न देती। दोनों के बीच दोस्ताना बातचीत भी होने लगी।

'डायरी लिखने का शौक है क्या तुम्हें?'

पूनम को कुछ दिन लगातार लिखते देख सुकन्या पूछ बैठी।

'हाँ, अच्छा लगता है कुछ लिखना, दिनभर की दिनचर्या, उससे क्या सीखा, क्या अच्छा लगा, क्या बुरा, सब लिख डालती हूँ।' डायरी में नजरें गड़ाए पूनम ने जवाब दिया।

'अच्छी आदत है, लेकिन मैं सोचती हूँ क्या कोई ईमानदारी से अपने बारे में सबकुछ लिख पाता होगा। अपनी कमियों को पहचानना एक अलग बात है और उन्हें स्वीकार करना दूसरी बात।'

'ठीक कह रही हो तुम, लेकिन संकोच तब होता है जब कोई दूसरा इसे पढ़ रहा हो, मैं कहाँ इतनी महान् शख्सियत हूँ कि कोई मेरी डायरी के पन्ने छापकर पुस्तक बना ले, और उसे सबके सामने ले आए।' और वह जोर से हँस पड़ी।

इतने में अंबुज ने आवाज दी और सुकन्या उस ओर चल दी।

'पता है सुकन्या, मेरी चाची ने कोई कोर कसर न छोड़ी थी मुझे बरबाद करने में, लेकिन वह तो भला हो अंबुजजी का जिन्होंने मुझे राह दिखाई।'

पूनम अकसर चाची द्वारा किए गए तथाकथित अत्याचारों की बात सुकन्या को बताती। और साथ में यह बताना भी न चूकती कि अंबुज को उससे कितना स्नेह है। अभी भी दर्द की इस छटपटाहट में उसका साथ उसे कितना सुकून देता है।

'स्नेह' कितना अच्छा है यह शब्द। उसके पिता भी उससे स्नेह करते थे, बाद में अम्मा भी और यहाँ अंबुज के माता-पिता भी, लेकिन इस शब्द का प्रयोग करते हुए पूनम की पलकें जिस अंदाज में झपकीं और चेहरे पर जो भाव आए, वह स्नेह को किसी और तरह से परिभाषित करने लगे।

इस बात को उसने स्वयं भी महसूस किया था कि अपने नितांत व्यक्तिगत कार्यों के लिए अंबुज पूनम को ही कहते। तो क्या अंबुज और पूनम के बीच स्नेह का कोई और बंधन जन्म ले रहा था? सुकन्या के मन में प्रश्न उठा, लेकिन अगले ही क्षण इस विचार को उसने सिरे से नकार दिया। पूनम नर्स है, उसे बीमार आदमी की सेवा का प्रशिक्षण प्राप्त है और फिर अंबुजजी ने उसके लिए किया भी बहुत है। ऐसे में भावनात्मक रूप से जुड़ाव सामान्य बात है। यों तो भावनात्मक जुड़ाव उसका भी कम न था, लेकिन वह अंबुज के स्थान पर परिवार के अन्य सदस्यों के संपर्क में अधिक थी, विशेषतया दोनों बेटियों के।

दूसरी ओर पूनम! उसके मन में कई दिनों से विचारों की उथल-पुथल मची थी। अंबुज की स्थिति धीरे-धीरे सुधर रही थी। कुछ कदम चलने में भी उसे थोड़ी सी सफलता मिली थी, लेकिन अभी बिना सहारे के चलना उसके लिए संभव न था।

लेकिन यह भी सत्य ही था कि कुछ समय बाद उसे नर्स की आवश्यकता नहीं रहनी थी। तब? तब क्या? उसने अपने से सवाल किया, वापस अपने अस्पताल में नौकरी और उसी से सटे एक कमरे के घर में निवास, इस हवेली को छोड़कर।

'क्या वह हमेशा के लिए इस घर में नहीं रह सकती?' मन में विचार कौंधा।

'लेकिन कैसे?' एक और सवाल मन में आया, जवाब भी दिल से मिला।

'क्या यह संभव है?' ऐसा लगा जैसे आईने के सामने खड़ी हो

पूनम स्वयं से ही सवाल-जवाब कर रही हो।

'हाँ, क्यों नहीं? यदि वह थोड़ी सी भी कोशिश करे तो यह संभव हो सकता है। अंबुज के माता-पिता उसकी सेवा से प्रभावित हैं और अंबुज को अकेलापन और गहरे अवसाद की स्थिति में सहारा दिया है उसने।'

'लेकिन यह तो तुम्हारा कर्तव्य है, नर्स हो तुम उसकी।'

'तो क्या हुआ? क्या मुझे आगे बढ़ने का हक नहीं।'

'इस तरह से?'

'हाँ, इसी तरह से।' और उसने इस सवाल-जवाब को यहीं समाप्त किया।

पूनम जैसी बहुत सी लड़कियाँ प्राइवेट अस्पतालों में नर्स का काम कर रही थीं। शहर के प्रतिष्ठित अस्पतालों में शहर के जाने-माने पैसे वाले लोगों का इलाज होता है यहाँ पर। ऐसे में लोगों से परिचय हो जाना असामान्य बात न थी, कुछ अतिरिक्त पैसे की चाह में गंभीर रूप से बीमार लोगों के घर तक भी जाना पड़ता। पैसे वाले परिवारों में धन की तो कमी न होती, लेकिन बीमार की सेवा करने का समय नहीं। ऐसे घरों में नौकरी की खातिर नर्सों का जाना कोई असामान्य बात न थी, यदि कुछ असामान्य था तो यह कि उसी दुनिया में जीने के सपने देखना, उसे भूल न पाना, उसी में जीने की कामना करना। और इसी असामान्य गलती की शिकार पूनम भी हो रही थी। दादी के दिखाए जिस सपने को पूनम परिस्थितिवश भूल रही थी, वह सपना अब उसे खुली आँखों से दिन के उजाले में भी दिखने लगा।

अंबुज को अस्पताल से घर आए छह माह बीत गए, शारीरिक स्थिति सामान्य हुई, व्यवसाय से संबंधित कार्य उसने घर से ही निबटाने आरंभ किए, पूनम के वापस जाने का समय समीप आता दिख रहा था। उसे नर्स की आवश्यकता न थी और फिर सुकन्या तो थी ही घर में।

'बेटी तेरे तो जीवन भर के ऋणी हो गए हैं हम। तू नहीं होती

तो···।' पूनम के सिर पर जानकी ने प्यार से हाथ फेरा।

'ऋणी तो मैं हूँ अंबुजजी की, अगर उन्होंने समय पर मदद न की होती तो उनकी सेवा करने लायक भी कहाँ रहती।'

ढेर सारे उपहार लेकर पूनम अंततः इस घर से विदा हुई।

'अंबुजजी का ध्यान रखना, अब तो तुम्हीं पर सारी जिम्मेदारी है।' सुकन्या को कहे गए ये शब्द, चिंता से पूर्ण थे या ईर्ष्या से, यह सुकन्या समझ न पाई।

❖ ग्यारह ❖

जीवन चल रहा था, लेकिन गति नहीं पकड़ पाता था, पूरे घर में अजब का सन्नाटा व्याप्त हो गया था। अंबुज सारे कार्य कर रहा था, लेकिन मशीन की भाँति। वर्षा को खोने के गम से न वह उबर पाया था, न दोनों बेटियाँ। हँसते-खेलते, प्रसन्नहृदय पुत्र की खामोशी वृद्ध माता-पिता का हृदय चीर जाती। नौकर-चाकर आपस में हँसने-बतियाने से भी कतराते। इस अजब से सूनेपन ने तुहिना और तृष्णा को भी असमय बड़ा कर दिया।

स्कूल से आने के बाद दोनों पिता के पास जा बैठतीं, याद आता वह समय जब स्कूल की बातें माँ को बताने की दोनों में दौड़ होती।

'मैं बड़ी हूँ, पहले मैं बताऊँगी मम्मी को।' तुहिना उम्र के बड़प्पन का पहला हक माँगती तो तृष्णा भी कम न थी।

'मैं छोटी हूँ, पहले छोटों का नंबर आता है।'

'तुम दोनों पहले कपड़े बदलकर खाना खा लो, उसके बाद में इत्मीनान से दोनों की बातें सुनूँगी।' वर्षा दोनों के झगड़े का तात्कालिक हल निकाल ही लेती।

लेकिन अब, अब न तो बच्चों में कुछ सुनाने का उत्साह था, न अंबुज में सुनने का। यद्यपि वह कोशिश करता कि वह बच्चों की बातों में रुचि ले, लेकिन मन का शून्य इतना बड़ा और गहरा हो चुका था कि

उसे कोई न पाट पाता।

वर्षा और दोनों बच्चों का वार्त्तालाप सुन उसे घोंसले में चिड़ियों और उसके नन्हे बच्चों की चहचहाट याद आ जाती। कितना मजबूत बंधन था माँ और बच्चों के बीच। 'जनरेशन गैप' माता-पिता और बच्चे के बीच की पीढ़ी के अंतर को इसी शब्द से परिभाषित करते प्रबुद्ध जन, लेकिन ऐसे किसी शब्द की इस घर में तो जैसे आवश्यकता ही न थी।

लेकिन अब बच्चों के व्यवहार में आए इस परिवर्तन को सुकन्या ने महसूस किया। बच्चों के मन के सूनेपन को भरने का प्रयास किया उसने, लेकिन माँ का स्थान ले पाना तो नामुमकिन ही था।

'यह क्या सुकन्या, तुम अंबुजजी का ध्यान नहीं रखती, देखो तो कितने कमजोर हो गए हैं इन दिनों में।' हफ्ते भर बाद पूनम सबसे मिलने आई तो सुकन्या को उलाहना देने से न चूकी।

सुकन्या को न अधिक बोलने की आदत, न बहस करने की, जानती थी कि पूनम पहले भी कई बार उसे नीचा दिखाने की कोशिश कर चुकी है, लेकिन वह ऐसा करती क्यों है मेरी समझ में न आता।

'अंबुजजी बहुत कमजोर हो गए हैं अम्मा।'

जानकी से सुकन्या की शिकायत न की, लेकिन अंबुज के प्रति अपनी चिंता जाहिर कर ही दी।

'क्या करूँ बेटा, दिनभर चुपचाप अपना काम करता रहता है, न किसी से बात, न हँसना-बोलना, क्या था मेरा बेटा और क्या हो गया?'

'उन्हें एक साथी चाहिए, ऐसा साथी जो उनका दर्द समझ सके, पीड़ा बाँट सके, नहीं तो वह घुट-घुटकर ही कहीं अवसाद में न चले जाएँ।'

'हाँ, कह तो ठीक रही है तू।' लेकिन कौन मिलेगा ऐसा साथी। वर्षा ने तो एक पल भी उसे कोई कमी न महसूस होने दी, उसका स्थान अंबुज के जीवन में कोई नहीं भर सकता।' अनायास ही निकल आए आँसुओं को जानकी ने बहने दिया। मन का गुब्बार कुछ हलका हुआ।

'आप उनके लिए कोई अच्छा सा जीवनसाथी ढूँढ़िए, वर्षाजी की कमी तो जीवन में कभी पूरी न होगी, लेकिन फिर भी...।' मन की बात डरते-डरते जुबान पर आ ही गई।

'कह तो तू ठीक रही है, लेकिन अंबुज तैयार होगा क्या? और फिर वर्षा को गए अभी वर्षभर भी तो पूरा नहीं हुआ।'

समय ने कब किसी की प्रतीक्षा की है, जो अंबुज की करता। एक वर्ष पूरा हुआ फिर दो वर्ष भी, लेकिन अंबुज के जीवन में परिवर्तन न आया। सुकन्या अभी भी उस घर का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा थी और पूनम उस घर में न रहते हुए भी घर की सदस्य जैसी ही बन गई।

अंबुज ने ऑफिस जाना भी आरंभ किया, लेकिन बाएँ पैर में अभी भी लचक बाकी थी।

एक दिन वह ऑफिस में बैठा कुछ काम कर रहा था कि पूनम वहीं आ गई। घर पर तो वह अकसर आया करती थी, लेकिन आज उसे ऑफिस में देख अंबुज को आश्‍चर्य हुआ।

'तुम यहाँ?'

'आप घर पर मिलते नहीं, इसलिए सोचा आपकी कुशल-क्षेम यहीं आकर पूछ लूँ।'

'क्यों? माँ ने नहीं बताया?' वह मुसकराया, जानता था कि उसकी माँ पूनम को बहुत प्यार करती है। उसका मानना है कि मानसिक आघात के उन दिनों में पूनम ही थी, जो उसे अवसाद के घेरे से बाहर ले आई, और कहीं-न-कहीं वह भी कृतज्ञ था उसका।

'बताया। शिकायत कर रही थी आपकी।'

'क्या?'

'यही कि आप अपना ध्यान नहीं रखते, किसी से बोलते-बतियाते नहीं। बस अपने में ही रहते हैं।'

'मैं तो पहले भी ऐसा ही था, अब क्या परिवर्तन आया।'

'नहीं। आप पहले ऐसे न थे, इतने वर्षों से तो हम भी देख रहे हैं

आपको।' फिर कुछ रुकी, कुछ और कहना चाहा, लेकिन स्वर ने गले से बाहर का रास्ता रोक लिया।

'कुछ कहना चाहती हो?' अंबुज ने उसकी दशा भाँप ली।

'हाँ, आप विवाह क्यों नहीं कर लेते।' वह शीघ्रता से बोल गई।

अंबुज चौंका, उसे पूनम से इस तरह के सुझाव की उम्मीद न थी। पिछले एक वर्ष में न जाने कितने लोगों ने उसे सहानुभूतिपूर्वक यह सुझाव दिया था। कोई उसके स्वयं के जीवन के लिए तो कोई बच्चों की परवरिश का हवाला देता, लेकिन वर्षा की यादें मन में इतनी गहरी पैठ गई थीं कि किसी और के लिए वहाँ स्थान ही न था। किसी के जीवन को बरबाद करने का क्या हक है उसे? जब अपने मन में किसी और को बसा ही नहीं पाना तो सिर्फ घर में बसाकर क्या फायदा?

मन हुआ पूनम को कोई कड़वा सा जवाब दे, जिससे वह इसके पश्चात् सुझाव देने की हिम्मत न कर सके, लेकिन फिर बुरे दिनों में उसके द्वारा की गई सेवा याद आई। बीमारी और अवसाद के क्षणों में यही पूनम संबल बन उसके साथ खड़ी थी। घर में वह नर्स बनकर आई थी, लेकिन अपने व्यवहार से दोस्त बन गई। उसने कटु बोलने के स्थान पर मजाक में ही बात टाल दी।

'तुमने तो एक भी विवाह नहीं किया और मेरा दूसरा विवाह कराने पर तुली हो, यह तो सरासर अन्याय है।'

पूनम का चेहरा लाल हो आया। ऐसे जवाब की उम्मीद न थी उसे, साथ ही यह भी लग गया कि अंबुज किसी की सुनने वाला नहीं।

देर शाम अंबुज घर लौटा तो जानकी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

'बढ़ती उम्र की बेटियाँ हैं, इस उम्र की सौ उलझनें होती हैं। हर किसी से कह भी नहीं पातीं, कोई तो हो उनकी सुननेवाला।'

'सुकन्या है तो।' माँ की बात का मतलब समझते हुए भी अंबुज अनजान बना रहा।

'सुकन्या माँ का स्थान नहीं ले सकती, बच्चों ने उसे अपनी गवर्नेस

के रूप में देखा है।'

'क्या गारंटी है कि जो आएगी उससे बच्चे पूरी बात कर पाएँगे, उसे अपना बना पाएँगे?' अंबुज ने अपनी शंका व्यक्त की।

'तू हाँ तो बोल बेटा। ऐसी लड़की खोजना मेरा काम।' जानकी उत्साहित हो उठी।

'लड़की नहीं, महिला माँ। माँ किसी की मजबूरी का फायदा मत उठाना। जो अपनी इच्छा से बिना किसी दबाव के हाँ कह दे वही…।'

'तू जानता है अपनी माँ को, कभी किसी का बुरा नहीं होने दूँगी।' जानकी के चेहरे पर खुशी के हजारों दीये जल उठे।

'एक बात और माँ।' जानकी ठिठकी। अब और क्या कहनेवाला है अंबुज। खुशी के इन दीयों को एक झोंके में न बुझा दे कहीं।

'तुहिना और तृष्णा से अवश्य मिलवा देना उसे, उनके साथ कुछ बुरा हुआ तो अपने आप को जीवनभर क्षमा न कर पाऊँगा मैं।' अंबुज भावुक हो उठा।

❖ बारह ❖

बच्चों को तो कुछ वर्ष ही आवश्यकता थी माँ की। उसके बाद तो उन्हें अपनी घर-गृहस्थी में व्यस्त हो जाना था, अकेला रह जाता, तो वह था अंबुज। अभी भी तो कितना अकेला था वह। जीवनसाथी की आवश्यकता तो उसे अधिक थी।

जानकी सब समझती थी, बच्चों से बात करना आवश्यक था। दरअसल सौतेले रिश्तों को कथा-कहानियों, फिल्मों, धारावाहिकों से कुछ इस तरह से परिभाषित किया गया है कि इस रिश्ते पर कोई विश्वास ही नहीं कर पाता। बच्चों के मन के इस खौफ को जानकी पहले ही निकाल चुकी थी।

अंबुज की स्वीकृति जानकी को जीवनदान दे गई। पुत्र को गले से लगा आँसू निकल आए।

अंबुज के चेहरे पर शांत मुसकान घिर आई। कितनी प्रसन्न है माँ आज? माँ होती ही ऐसी है, बच्चों के छोटे से दु:ख से दु:खी और छोटी सी खुशी में सुखी। संतान का बड़ा दु:ख तो उन्हें तोड़कर ही रख देता है। माँ के चेहरे की खुशी देख उसने भी अंतर्मन में खुशी का अहसास किया।

कितना दु:खी रहे हैं पिछले कुछ समय से माता-पिता उसके कारण। अपने जीवन में समाज के दबे-कुचले, दु:खी लोगों के लिए

काम करने की सदा उसके मन में तीव्र इच्छा रही, उनके चेहरे की थोड़ी सी खुशी के सामने उसे करोड़ों की दौलत भी तुच्छ लगी, लेकिन अब तक उसके मन में ऐसा नहीं आया कि थोड़े से प्रयत्न करके, माता-पिता को भी खुशी दी जा सकती है।

इस स्वीकृति के कुछ ही दिनों बाद अंबुज एक फाइल लिये बैठा था कि जानकी ने एक तसवीर सामने रख दी।

'ये अंजली है।' उम्र तुमसे बहुत कम नहीं, माता-पिता की मृत्यु हुए बहुत समय हो गया। पिता का स्वयं का व्यवसाय था, अब इस व्यवसाय को वह स्वयं देखती है। चाचा-ताऊ हैं, लेकिन सब अपने-अपने घर-परिवार में व्यस्त। अंजली का घर बसना है, इस ओर किसी का ध्यान ही न गया।'

'आपने तो किसी जासूस की तरह सारी सूचनाएँ एकत्र कर लीं उसके बारे में।' अंबुज हँसा।

'बच्चों के और तेरे भविष्य का सवाल है, फिर सबसे महत्त्वपूर्ण बात उसे किसी दबाव में आकर हाँ नहीं कहनी चाहिए।'

'बच्चों से बात हो गई?'

'पहले तू तो हाँ बोल बेटा।'

'आप मेरे लिए बेहतर ही चाहेंगी, बच्चों से एक बार पूछ लें और मिलवा दें, मेरी उसी में हाँ है।'

अंबुज की उदासीनता जानकी के मन को खटक गई। कहीं बाद में ये अंजली के प्रति भी ऐसे ही उदासीन रहा तो।

अपनी दुविधा को उन्होंने मन से निकाला और बच्चों के कमरे की ओर चल दी, अंबुज का मन बदले, इससे पहले वह सभी खुद शीघ्रता से कर डालना चाहती थी।

दोनों ओर से हाँ हुई, अंबुज और अंजली मिले, बच्चे अंजली से मिले और सगाई का दिन निश्चित हो गया।

'माँ सगाई करने की आवश्यकता क्या है? घर के लोगों की

उपस्थिति में विवाह हो जाए यही ठीक रहेगा।' अंबुज किसी समारोह के पक्ष में न था।

बेटा किसी लड़की के जीवन में विवाह एक महत्त्वपूर्ण घटना है। हर किसी के अरमान होते हैं, सपने होते हैं, इस दिन को यादगार करने के लिए अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार प्रयत्न करते हैं। तेरे लिए यह दूसरा विवाह है, लेकिन अंजली, वह तो पहली बार दुलहन बन रही है, उसके अरमानों का कत्ल क्यों करें हम।'

'माँ कह तो ठीक रही है', अंबुज ने सोचा और उसने अब इसमें और हस्तक्षेप न किया।

घर में चर्चा हुई और सुकन्या को न पता चले ऐसा हो नहीं सकता। थोड़ी सी हैरानी उसे अवश्य थी, उसे लगता था अंबुज कभी विवाह के लिए राजी होगा तो पूनम इसका हिस्सा अवश्य होगी। घोर अवसाद के उन दिनों में अंबुज पूनम के बेहद करीब थी और पूनम ने भी इशारों-ही-इशारों में कई बार इस ओर इंगित किया था, लेकिन पूनम है कहाँ आजकल?

'पूनम! कहाँ है तू आजकल? इतने दिनों से घर नहीं आई।' संयोगवश अगले ही दिन पूनम वहाँ थी।

'क्या बात है अम्मा? बहुत खुश लग रही हैं आप?'

'बात ही ऐसी है, तू भी सुनेगी तो खुशी से झूम उठेगी।' जानकी का स्वर उत्साह से भरा था।

वर्षा के जाने के बाद पूनम ने पहली बार जानकी को इतना खुश देखा। क्या कारण होगा, इस खुशी का वह सोच ही रही थी कि जानकी ने सुकन्या को आवाज दी।

'सुकन्या! बेटी मिठाई तो ले आ अंदर से। देख पूनम आई है।'

'पूनम ने तश्तरी से एक टुकड़ा मिठाई उठा मुँह में डाला ही था कि जानकी ने इस खुशी का कारण बताया।

'अंबुज विवाह के लिए मान गया है और हमने लड़की भी ढूँढ़

ली है। शादी! लड़की!' पूनम के मुँह का स्वाद कसैला हो आया, जो मिठाई का टुकड़ा अभी-अभी मुँह में मिठास भर रहा था। वही मिठाई दूसरे ही क्षण नीम के पत्तों से भी अधिक कड़वी महसूस होने लगी। न उगलते बना न निगलते।

'बहुत अच्छी लड़की है अंजली, दोनों बच्चे भी मिले उससे।'

जानकी अपनी रौ में बोले जा रही थी। बिना पूनम के चेहरे का भाव पढ़े, लेकिन पूनम के चेहरे के उड़ते रंग को सुकन्या ने महसूस किया।

क्या अम्मा पूनम के मन के भावों से अनभिज्ञ होगी? इतने महीनों तक अंबुज की जी-जान से सेवा करना क्या सिर्फ नर्स होने का कर्तव्य निभा भर रही थी?

पूनम की स्थिति से अनजान जानकी उसे होनेवाली बहू के कपड़े-गहने बड़े चाव से दिखा रही थी।

इतने सुंदर गहने, एक से बढ़कर एक डिजाइन, शहर की चुनिंदा दुकानों से खरीदी गईं बेहतरीन साड़ियाँ, पूनम के मन पर साँप लोट गए।

यह सब उसका भी हो सकता था, ...उसी का होना चाहिए था।

'पसंद आए बेटी।' जानकी ने ममता भरे स्वर में पूछा।

'पूछ तो ऐसे रही है जैसे मेरे लिए ही लिया गया हो।' पूनम ने मन-ही-मन सोचा।

'अंबुजजी हैं घर पर?' प्रश्न का जवाब भी प्रश्न था।

'है तो, लेकिन आराम कर रहा है, फिर मिल लेना तू उससे? और फिर सगाई में तो आएगी ही तू।'

'हाँ, मुझे तो आना ही होगा।'

पूनम के स्वर की तीव्रता को सुकन्या ने महसूस किया, आखिर कहना क्या चाहती है पूनम?

'यह साड़ी तेरे लिए है, उस दिन पहनकर आना।' और जानकी ने एक गुलाबी रंग की जरीदार साड़ी पूनम के हाथ में पकड़ा दी।

'हूँ! साड़ी तो ऐसे दे रही है जैसे बहू बना रही हो मुझे अपनी,

नहीं चाहिए मुझे भीख।' कमरे पर पहुँचते ही उसने साड़ी का पैकेट बिस्तर पर फेंक दिया, क्रोध और अपमान से चेहरे का रंग लाल हो गया, आँसू पलकों पर आकर ठहर गए।

'क्या हो गया तुझे?' गुंजन, जो उसी समय अपनी ड्यूटी से घर लौटी थी और उसी के साथ रहती थी, को उसकी हालत देख आश्चर्य हुआ।

'अंबुज की सगाई हो रही है और उनकी माँ ने यह साड़ी दी है मुझे उस दिन पहनने के लिए।'

गुंजन ने उसके स्वर की तीव्रता को महसूस किया। सदा सम्मान सहित अंबुजजी कहनेवाली पूनम आज सामान्य शिष्टाचार भी भूल चुकी थी।

'किसके साथ?'

'है कोई अंजली, इतने महीनों से सेवा मैंने की। बुरे वक्त में साथ रही, प्यार का दिखावा मेरे साथ किया और जब शादी का नंबर आया तो मुझे दूध में पड़ी मक्खी के समान निकाल दिया। हम गरीबों की कोई इज्जत नहीं होती क्या?'

'तू परेशान क्यों हो रही है, एक बार अंबुजजी से बात कर ले। समाज में उनकी अच्छी छवि है, हो सकता है कोई गलतफहमी हो।' गुंजन ने समझाया। कई वर्षों से इसी शहर में रहने के नाते वह अंबुज के परिवार को भली-भाँति जानती थी।

'गलतफहमी! क्या मतलब है तेरा? क्या मुझे गलतफहमी हुई है? इस्तेमाल किया है उन्होंने मेरा, जब जरूरत थी तब अपना बनाया और ···।' क्रोध की अधिकता से पूनम हाँफने लगी थी।

गुंजन चुप रही। पूनम भी कुछ देर चुप हो अपने आँसुओं को पीने का यत्न करती रही, फिर गुंजन को ही निशाने पर ले लिया।

'तू भी उन्हीं का पक्ष लेगी, बड़े लोग हैं वह, जो चाहे करें तब भी साफ- सुथरे ही रहेंगे, दाग तो गरीबों की किस्मत में ही लिखे हैं, लेकिन

मैं भी छोड़ूँगी नहीं।'

गुंजन ने इस समय कुछ भी बोलना ठीक न समझा, पूनम इतने गुस्से में थी कि उसकी सोचने-समझने की शक्ति क्षीण हो चुकी थी।

कुछ देर पूनम आवेश में कमरे में टहलती रही, फिर थककर कुरसी पर बैठ गई, फिर उठकर टहलने लगी। गुंजन को उसकी मानसिक स्थिति ठीक न लगी। बिना कुछ बोले पानी का गिलास उसके सामने रख दिया, पूनम ने उसे खा जानेवाली नजरों से घूरा, लेकिन पानी का गिलास ले उसे एक ही साँस में खाली कर दिया।

कुछ देर कमरे में खामोशी पसरती रही। पूनम कुरसी पर सिर टिकाए छत की तरफ एकटक नजरें गड़ाए थी। गुंजन भी अपनी चारपाई पर बैठे विचारों में मग्न थी।

'तुम ठीक तो हो न पूनम?'

चुप्पी को तोड़ते हुए गुंजन ने पूछा।

'क्या खाक ठीक हूँ? मेरे सारे अरमानों पर पानी फेर दिया उसने' ''जब उनको मेरी जरूरत थी तब तो वे मुझे घर का सदस्य कहते थे और अब'''जब वास्तव में मुझे घर का सदस्य बनना था तो कोई और उन्हें चाहिए। कैसे लोग हैं ये?'

'तुम ही बताओ न गुंजन, मुझमें क्या कमी है? क्या मैं उस घर के लायक नहीं? क्या आलीशान हवेली, ऐश्वर्यता, वैभवता, संपन्नता हमारे नसीब में नहीं? बोलो न गुंजन? तुम कहती क्यों नहीं?' यह कहते-कहते पूनम गुंजन के बेड पर बैठ गई।

'देख पूनम, मैं जानती हूँ कि आज तेरा दिल दु:ख रहा है, तुझे पीड़ा हो रही है कि तेरे सारे सपने टूटते जा रहे हैं। मैं तेरी दोस्त हूँ। सही मायनों में दोस्त अपने दोस्त के सुख-दु:ख का सहभागी होता है। खुशी की राह पर दोस्त को चलाना और गलत रास्तों पर चलने से रोकना भी दोस्त का ही फर्ज है। इसलिए मैं तुझे सही राय ही दूँगी'''।'

शांत और गंभीर भाव से गुंजन अपनी बात की भूमिका बाँधती गई।

'तू गोल-मटोल मत कर···सीधी बात बोल। तेरी यह फिलॉसफी मेरी समझ से परे है।' बीच में ही टोकते ही पूनम बोली।

'फिलॉसफी नहीं पूनम···हकीकत है यह···समझ सको तो समझना···तुम हमेशा कहती हो कि तुम्हें अंबुज के घर से लगाव हो गया है, एक अपनापन लगने लगा था तुम्हें और यह स्वाभाविक भी था···क्योंकि हम ही अगर किसी से दो दिन प्यार से बात करते हैं तो उस व्यक्ति से अपनापन महसूस होने लगता है। और तुमने तो इतने महीनों उस घर में रहकर अंबुज की देखभाल की, लेकिन···।'

गुंजन बोल ही रही थी कि पूनम ने बीच में ही टोक दिया।

'लेकिन? लेकिन क्या···गुंजन?'

'लेकिन यह जरूरी नहीं पूनम, जैसी भावनाएँ उस घर में तुम्हारे मन में अंबुजजी के लिए जन्मी हैं, वह अंबुजजी के मन में भी हों?'

गुंजन के ये शब्द कहने पर पूनम के चेहरे पर गुंजन के लिए ही प्रश्नात्मक भावभंगिमा आ गई।

'लेकिन गुंजन···' उसे तो अपनी बात कहनी ही थी···।

'पूनम ! अभी समय ही कितना हुआ है उस घटना को···बेशक तुम्हारे और हमारे लिए यह एक वर्ष का समय हो गया हो, लेकिन अंबुजजी···उनके लिए तो आज भी यह क्षणभर पहले की घटना है, जरा सोच पूनम उस व्यक्ति ने अपनी पत्नी को खोया है···स्वयं वह शारीरिक रूप से चोटिल होने के साथ-साथ मानसिक आघात और संताप से जूझता रहा। तुम्हारी सेवा और सहृदय व्यवहार ने उनको उस दु:खों के भँवर से ऊपर लाने का काम तो किया, लेकिन दिल पर लगी उस चोट को तुम ठीक न कर पाई, और इसका कारण जानती हो तुम क्या है?'

'क्या है?···' पूनम बोली।

इसका कारण यह है पूनम कि अंबुजजी उस चोट से ठीक होना ही नहीं चाह रहे हैं। वर्षाजी की यादों को वे याद करना चाहते हैं, उन्हें हर पल महसूस करते होंगे वे। उनकी आवाज आज भी उनके कानों में गूँजती

होंगी। उनके स्पर्श का अहसास आज भी उनके शरीर में सिहरन पैदा करता होगा। तुहिना और तृष्णा के बीच आज भी वे वर्षाजी को देखते हैं। वे कहते तो नहीं होंगे पर केवल महसूस करके इन सबसे उपजे दर्द को अपने दिल में समाते होंगे…।

'ऐसे हालातों में तुम्हारे प्रति उनके मन में प्रेम की भावना उत्पन्न होना…शायद नहीं…पूनम।'

'नहीं गुंजन…ऐसा नहीं है। मैंने कई बार महसूस किया है कि उन्होंने प्रेमाकर्षण के कारण मुझसे बात की।'

पूनम अपनी ही बात को ऊपर रखते हुए बोली।

'पता नहीं पूनम…यह तो मैं नहीं बता सकती…और अगर हाँ…तुझे ऐसा कुछ लगता है और ये भी लगता है कि कहीं संकोचवश अंबुजजी तुझसे कह नहीं पा रहे हों तो तू उन्हीं से जाकर आराम से बात कर, लेकिन इस बात को लेकर अनर्गगल बातें कहना और सोचना तो गलत है।'

गुंजन ने पूनम को समझाना चाहा…लेकिन पूनम…वह कहाँ किसी की सुनने वाली थी…उसे तो बस वह सुविधा संपन्न महल जैसा घर अपने हाथों से फिसलता नजर आ रहा था। उसने तो अपने मन में गाँठ बाँध ली थी कि हर हाल में उसे उस घर में अंबुज की पत्नी बनकर जाना है। चाहे उसके लिए उसे कुछ भी करना पड़े…कुछ भी…। मन में यह सोचते हुए वह बोलने लगी, 'गुंजन मेरे लिए यह समय इन बातों को सोचने का नहीं है। मुझे कुछ न कुछ तो करना ही है, लेकिन हाँ, एक बार मैं अंबुज से जरूर मिलूँगी और उससे पूछूँगी कि क्यों किया उसने मेरे साथ ऐसा?'

गुंजन को लग रहा था कि वह नहीं समझेगी, इसलिए उसने भी रूखे अंदाज में कह दिया। 'तुझे जो सोचना है सोच, करना है कर, लेकिन सीधे तौर पर मैं एक बात जरूर कहूँगी कि तुझे उस व्यक्ति के अहित के लिए नहीं सोचना चाहिए, जिसने तेरे जीवन को नया जन्म

दिया हो। तुझे वास्तव में अगर अंबुजजी से प्रेम होने लगा है तो तुझे उनकी खुशी में खुश होना चाहिए, और वैसे भी प्यार को तो कई बार त्याग की परीक्षा से गुजरना होता है, तुझे उस घर का सदस्य बने रहना है। इसके लिए जरूरी तो नहीं कि अंबुजजी की पत्नी ही बना जाए…ऐसी आकांक्षा से परे तुम अपना जीवन उनके लिए समर्पित कर दो न? बिना किसी ऐसे रिश्ते में बँधे हुए, लेकिन मुझे तो लगता है, तुझे अंबुजजी से प्रेम उनकी वैभवता के कारण हुआ…उस सपने के कारण हुआ जो तुम्हारी दादी ने तुम्हें दिखाया और आज इसे छिनता देख तू इस तरह क्रोध और अवसाद से घिर रही है। अरे ज्यादा कुछ न सही अंबुजजी के अहसानों की तो ऋणी रह, जिन्होंने आज तुझे अपने पैरों पर खड़ा कराया।'

इतना कहकर चादर से अपना मुँह ढक लिया गुंजन ने।

लेकिन पूनम को जैसे किसी ने कुछ कहा ही न हो।

❖ तेरह ❖

अगले दिन सुबह दस बजे ही पूनम अंबुज के घर आ धमकी। इतने महीने वहाँ रहकर सबकी दिनचर्या पता थी उसे। जानती थी जानकी इस समय पूजागृह में होगी, रामनाथजी अपने कमरे में और अंबुज स्टडी रूम में। पूनम इस घर की सदस्य सी ही थी, इसलिए उसे सीधे स्टडी रूम में जाने पर किसी ने न रोका।

'बधाई हो, सुना है आप विवाह के लिए राजी हो गए हैं और रिश्ता भी पक्का हो गया है।' पूनम व्यंग्य से बोली।

किसी किताब के पन्नों में डूबा अंबुज, पूनम के स्वर का व्यंग्य न भाँप पाया।

'अरे पूनम तुम! धन्यवाद। बहुत दिनों बाद आईं।' सिर उठाकर उसने पूनम की ओर देखा, लेकिन चेहरे के ये भाव बधाई देनेवाले तो हरगिज नहीं थे। तमतमाया चेहरा, लाल आँखें, मेज पर रखे काँपते हाथ।

'तुम्हारी तबीयत तो ठीक है पूनम?' उसकी हालत देख अंबुज घबरा गया।

'अच्छा नहीं किया मेरे साथ, धोखा दिया मुझे।' पूनम का स्वर काँप रहा था। अंबुज भौंचक रहा गया, क्या अच्छा नहीं किया उसने? ये किस धोखे की बात कर रही है पूनम?

'बहुत बड़े समाजसेवक बनते हैं न आप, बहुत सारी बेसहारा महिलाओं

को सहारा दिया है आपने, लेकिन सब दिखावा है। मेरी भावनाओं का फायदा उठाया आपने। पत्नी के जाने के बाद मुझसे अपना उल्लू सीधा करते रहे और जब विवाह करने की बारी आई तो अमीर घर की लड़की चुन ली।' पूनम अब अपने आँसू न रोक पाई।

अब अंबुज को थोड़ा-थोड़ा समझ आया। पिछले कुछ समय से वह समझ तो रहा था कि पूनम के हाव-भाव बदल रहे हैं। उसके समीप आने का बहाना ढूँढ़ती रहती है वह। घर पर आती तब भी उसका ध्यान अंबुज के व्यक्तिगत कार्यों की ओर अधिक रहता, कई बार अंबुज को उसका व्यवहार अनुचित लगा, लेकिन शिष्टाचार और सहृदयतावश विरोध न कर पाया, बस यही गलती थी अंबुज की, जिसने आज यह स्थिति पैदा कर दी।

अंबुज की समझ में न आया क्या जवाब दे। पूनम इस समय बहुत गुस्से में थी। ऊँचे शब्दों में कुछ कहना आग में घी डालने के समान होता। प्यार से समझाने पर ही कुछ बात सुधर सकती थी।

'पूनम, तुम मुझसे बहुत छोटी हो, मैंने कभी तुम्हें इस रूप में नहीं देखा, तुम्हें बहुत बड़ी गलतफहमी हुई है। मेरे लिए तुम छोटी बहन जैसी हो।' शांत स्वर में उसने समझाने का प्रयास किया।

लेकिन पूनम तो जैसे रणचंडी का रूप धारण कर आई थी। अंबुज के समझाने पर वह और अधिक बिफर उठी।

'ओह! तो अब बहन बनाने का नाटक कर रहे हैं। जब अपने आपको संपूर्ण रूप से मुझे सौंप दिया था तब राखी बँधवाने की याद नहीं आई। समझते क्या हो अपने आपको, मैं सारी दुनिया के सामने आपका असली चेहरा लाकर रहूँगी।' और वह पैर पटकती बाहर निकल गई।

अंबुज उसके इस व्यवहार से हैरान-परेशान हो उठा।

क्यों ऐसा व्यवहार कर रही है पूनम? जबसे वह चाचा का घर छोड़कर आई थी, तबसे हर प्रकार से उसकी मदद की। पूनम की शहर के बड़े अस्पताल में नौकरी भी उसी के प्रयत्नों का नतीजा था।

उसे पूनम का पहले-पहले देखा वह रूप याद आ गया, जब होश

में आने के बाद वह अपनी चाची को भला-बुरा कह रही थी और चाची का रूप भी उतना ही रौद्र था। पूनम जहाँ अपने घर जाने से मना कर रही थी, वहीं चाची को भी कोई रुचि न थी कि पूनम घर वापस आए। संपत्ति के बँटवारे के समय भी उन्होंने कोई विवाद न किया।

तो क्या पूनम का स्वभाव ही इतना उग्र है? क्या पूनम में ही कोई कमी है कि वह किसी के साथ निभा नहीं पाती? इस पहलू की ओर भी उसका ध्यान गया।

अब यक्ष प्रश्न यह था कि पूनम का अगला कदम क्या होगा? क्या वह सचमुच कोई बखेड़ा खड़ा करना चाहती थी? यह प्रतिक्रिया उसका क्षणिक आवेश था? क्या होनेवाला है? यह तो भविष्य के गर्भ में छुपा था।

आखिर सगाई का दिन भी आया, लेकिन पूनम समारोह में शामिल न हुई। जानकी को आश्चर्य हुआ, सुकन्या को फोन करने को कहा, लेकिन उसका मोबाइल बंद था।

'आज ही के दिन कहीं जाना था इसे, अंबुज के पुनर्जीवन का इतना महत्त्वपूर्ण दिन है आज और जिसने उसे इस अवसाद से निकालने में सहायता की, वह यहाँ पर नहीं है।' जानकी को उसका न आना अप्रत्याशित लग रहा था।

लेकिन अंबुज जानता था वह नहीं आएगी, फिर भी किसी अनहोनी की आशंका से ध्यान बार-बार मुख्य द्वार की ओर चला जाता।

समारोह शांतिपूर्वक निपट गया। अंजली खुश थी कि उसे उम्र के इस पड़ाव पर अंबुज जैसा जीवनसाथी, जानकी जैसी माँ मिली। वहीं अंबुज का मन यही सोचकर प्रसन्न था कि दोनों बच्चे और उसके माता-पिता इस रिश्ते से खुश थे।

पूनम उस दिन न अस्पताल में थी न घर पर, 'कहाँ गई होगी?' गुंजन ने सोचा।

अंबुज के घर से लौटने के बाद हताशा और क्रोध दोनों के

मिले-जुले भाव थे उसके चेहरे पर।

'यदि अंबुज का विवाह मेरे साथ नहीं हो सकता तो और किसी के साथ भी मैं होने न दूँगी।'

'लेकिन हुआ क्या? तू मिलने गई थी उन्हें, क्या कहा उन्होंने?' गुंजन ने उसका हाथ पकड़ उसे अपने पास बिठा लिया।

'कहना क्या था? कह दिया उनके मन में मेरे प्रति ऐसी कोई भावना नहीं।'

'लेकिन तू तो कहती थी, वह तुझे प्यार करते हैं?' गुंजन को कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था।

'हाँ, करते थे, प्रमाण हैं मेरे पास इसके, अब देखना मैं क्या करती हूँ।' पूनम का क्रोध किसी तरह शांत नहीं हो रहा था।

'करना क्या चाहती है तू?' पूनम की हालत देख गुंजन भयभीत हो उठी। न जाने क्या कर डालेगी ये, उसे पता था कि पहले भी चाची के डाँटने पर आत्महत्या का प्रयास कर चुकी है पूनम।

'मीडिया के पास जाऊँगी, पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करवाऊँगी। तब देखें कैसे रचाते हैं दूसरा ब्याह।'

पूनम के इरादे देख गुंजन घबरा उठी। हो सकता है अंबुज उससे प्यार करते हों, लेकिन किसी कारण विवाह न कर पा रहे हों, लेकिन पूर्व में बहुत सहारा दिया है उन्होंने पूनम को। यदि उनका सहयोग न होता तो पूनम आज न जाने कहाँ होती। इतना कृतघ्न तो नहीं होना चाहिए उसे, और मन में आई यही बात उसने पूनम को समझाई।

पूनम के चेहरे पर एक के बाद एक भाव आते चले गए।

'कुछ असर पड़ा है शायद।' गुंजन ने सोचा, दो-तीन दिन तक शांति रही, न पूनम ने इस बारे में कोई बात की, न गुंजन ने उसे छेड़ा।

सगाई के दिन पूनम सुबह ही घर से निकल गई। उसके संपर्क करने का प्रयास भी व्यर्थ रहा। गुंजन दिनभर किसी अनहोनी की आशंका में डूबती-उतरती रही।

अस्पताल में उसकी ड्यूटी दोपहर बाद की थी। गुंजन काम तो करती रही, लेकिन ध्यान कहीं और ही था। तीन-चार लोगों को एकत्रित हो बात करते देखती तो कान स्वत: ही उनकी बात सुनना चाहते। अस्पताल में किसी भी कर्मचारी का मोबाइल उच्च स्वर में बजे, इसकी सख्त मनाही थी। इसलिए गुंजन बार-बार साइलेंट मोड में रखे गए मोबाइल को जेब से निकालकर देखती, कहीं कोई कॉल छूट तो नहीं गई? लेकिन कोई समाचार न मिला।

पूनम सँभल गई है शायद, उसने मन-ही-मन सोचा, लेकिन उसे क्या पता था कि यह आनेवाले भीषण तूफान से पहले की शांति है। उस दिन पूनम देर रात घर लौटी और सुबह जल्दी ही घर से निकल गई। अस्पताल से उसने छुट्टी ले ली थी।

अगला दिन सामान्य दिनों की ही भाँति था, लेकिन रामनाथजी के घर का वातावरण कुछ अलग महसूस हो रहा था। वर्षा के असमय प्रयाण से घर में जो उदासी रूपी कुहासा फैला था वह आज कुछ छँटता सा प्रतीत हो रहा था। किसी की भी दिनचर्या में कहीं कोई परिवर्तन न था।

अंबुज स्टडी रूम में था कि उसका मोबाइल बज उठा। उधर से उसका वकील था।

'अंबुज एक परेशानी हो गई है।' वकील साहब उससे उम्र में काफी बड़े थे और परिवार के सदस्य की भाँति उनका स्नेह व्यावसायिक कम पुत्रवत अधिक था। अंबुज को उनके स्वर में महसूस हुआ कि वह कुछ कहने में झिझक रहे हैं।

'क्या बात है अंकल? आप परेशान लग रहे हैं।' अंबुज का दिल धड़क उठा। जिस अनहोनी की आशंका उसे कल थी, क्या वह आज सही साबित हुई है?

उसका अनुमान सही निकला। पूनम कुछ स्थानीय महिला संगठनों की कार्यकत्रियों के साथ अंबुज के विरुद्ध शोषण का केस दर्ज कराने पहुँची थी।

मृदु और सौम्य स्वभाव व हर किसी की सहायता के लिए सदा तत्पर रहने वाले अंबुज के शुभचिंतकों की संख्या यहाँ कम न थी, वहीं सामाजिक और व्यावसायिक जीवन के चलते कुछ ईर्ष्यालु स्वभाव व गलत कार्य करने वाले लोगों की राह का रोड़ा भी वह बना हुआ था। समाजसेवा के काम पर सरकार और विभिन्न संस्थाओं से धन एकत्रित करनेवालों का तो बाजार ही बंद कर दिया था अंबुज ने। ऐसे लोग सदा इस ताक में रहते कि कैसे कोई मौका मिले, और वे अंबुज को घेर लें और अब ऐसे ही हाथों की कठपुतली बन बैठी थी पूनम। मुद्दा भी कुछ छोटा न था, जिन असहाय, दु:खी महिलाओं की सुरक्षा के लिए काम करता था उसी का तथाकथित शोषण।

आरोप भी लगे तो उस लड़की के कारण, जिसकी उसने हर समय सहायता की थी। बिना किसी खून के रिश्ते के रिश्ता बन गया था उसका सबके साथ। आज उसे हर ऐसे रिश्ते की दीवार दरकती सी लगी।

अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करना होगा। थोड़ी ही देर में वकील साहब कुछ कागज लेकर उपस्थित थे। यंत्रवत अंबुज ने कागजों पर हस्ताक्षर किए, न उसने कुछ पूछा न वकील साहब ने उसके बारे में कुछ कहा। ऐसा प्रसंग ही न था जिस पर चर्चा की जाती।

'नरेश आया था क्या? मुझसे मिलकर नहीं गया। न जाने कितने व्यस्त होते हैं ये वकील भी।' रामनाथजी ने वकील को जाते हुए देख लिया था।

'हाँ, जल्दी में थे, कुछ आवश्यक पेपर्स साइन कराने आए थे।' अंबुज ने सिर झुकाकर जवाब दिया। पिता के चेहरे की ओर देखने की हिम्मत न हुई; डर था, कहीं पिता की अनुभवी दृष्टि उसके मन की घबराहट और झूठ न भाँप ले।

लेकिन कब तक छिपाएगा इस बात को घर के बाकी लोगों से। आज तो किसी तरह से बात छुप भी जाए, लेकिन कल सुबह शहर के स्थानीय समाचार-पत्र क्या इसे छिपी रहने देंगे, उनके लिए तो यह ब्रेकिंग न्यूज होगी।

लेकिन इसके लिए उसे अगले दिन की प्रतीक्षा न करनी पड़ी, थोड़ी ही देर में ये समाचार आग की भाँति पूरे शहर में फैल गया। दोपहर ढलते-ढलते सामाजिक प्रतिष्ठा, संपन्नता के प्रतीक इस घर के बाहर अंबुज के विरुद्ध नारे लगाते कई महिला संगठनों का जमावड़ा लग चुका था।

'यह क्या हो रहा है? बाहर इतनी भीड़, इतना शोर? आखिर हुआ क्या है?' शोर सुन जानकी बाहर चली आई।

'कुछ नहीं माँ, आप जाइए अंदर मैं देख लूँगा।'

'कैसे कुछ नहीं, तेरे विरुद्ध नारों के स्वर यहाँ तक आ रहे हैं और तू कहता है कोई बात नहीं, कोई मुझे बताएगा कुछ?' जानकी घबरा रही थी और बाहर से आने वाले हाय, हाय, मुरदाबाद, इनसाफ चाहिए जैसे स्वरों ने उनकी घबराहट को और बढ़ा दिया था।

अंबुज उन्हें जितना वहाँ से हटाने की चेष्टा करता उनकी उत्सुकता और बढ़ती जाती। ऐसे अप्रिय प्रसंग पर कैसे अपने माता-पिता के सामने बात करे। थोड़ी ही देर में सभी के सामने सबकुछ स्पष्ट हो चुका था। अंबुज और रामनाथजी ने जहाँ गहरी चुप्पी ओढ़ ली थी। वहीं जानकी पूनम से मिलने को बेचैन थी।

'मेरे सामने लाओ उस लड़की को, आखिर पूछूँ तो उससे, ऐसा क्यों किया उसने? कितने प्यार से अपनी बेटी की तरह रखा था उसे घर में।' अपने पुत्र पर विश्वास की गहराइयाँ इतनी अधिक थी कि इस बारे में झूठ-सच कुछ पूछने की आवश्यकता न समझी।

'माँ, आप शांत रहिए। सब ठीक हो जाएगा। झूठ के पाँव नहीं होते। यह झूठ भी कुछ ही समय में लड़खड़ाकर गिर जाएगा।' अंबुज ने जानकी को शांत रखने का प्रयास किया।

थोड़ी ही देर में पुलिस भीड़ को वहाँ से हटाकर स्थिति को नियंत्रित कर लिया, लेकिन जो चिनगारी उस दिन की आग की राख में दबी थी वह अगले ही दिन शोला बन भड़क उठी।

अगले दिन सुबह शहर के लगभग सभी स्थानीय अखबार इस खबर से रँगे पड़े थे, अंबुज के घर में तो जैसे सन्नाटा पसरा था। किसी ने अखबारों को छुआ भी न था।

इसी घर में एक ओर सुकन्या कुछ दूसरी ही सोच में थी। अंबुज की ओर पूनम के झुकाव को उसने स्वयं भी कई बार महसूस किया था और पूनम भी परोक्ष में बात को सुकन्या के सामने स्वीकार कर चुकी थी।

'क्या अंबुजजी भी···?' सुकन्या ने सोचा, 'लेकिन अंबुजजी बहुत भले आदमी हैं। ऐसा होता तो वह पूनम को छोड़, किसी और से विवाह की सोचते भी नहीं।' इतने वर्षों इस घर में रहकर अंबुज पर इतना तो विश्वास था उसे।

'यदि ऐसा नहीं है तो फिर पूनम चाहती क्या है? इस घर के इतने अहसान हैं उस पर, यदि पूनम से मिलकर वह इस बारे में बात कर पाए और उसे समझा पाए।' यही सोच अगले दिन बाजार जाने का बहाना कर पूनम के हॉस्टल की ओर चल दी।

कमरे पर ताला लगा था। गुंजन अस्पताल में अपनी ड्यूटी पर थी। सुकन्या उसी के पास चली गई।

'वह तो घर नहीं आई तब से, सुबह मैं ड्यूटी पर थी जब वह निकली तब से पता नहीं कहाँ है?' गुंजन की निगाहें एकटक जमीन को निहार रही थीं।

पूनम ने जो किया था उसका अपराधबोध गुंजन के चेहरे पर दिख रहा था।

'तुम क्यों परेशान हो रही हो? तुमने तो कुछ नहीं किया।' सुकन्या ने उसे सांत्वना दी।

'बहुत समझाया था मैंने उसे। कहा था यदि ऐसा कुछ है भी तो उसके पिछले अहसानों को याद कर और छोड़ दे इस बात को। मुझे लगा था कि वह मान भी गई है, लेकिन अब ये···।'

'अंबुजजी और पूनम के बीच में कुछ था क्या?' सुकन्या ने गुंजन से सीधा प्रश्न पूछ लिया। अपने प्रश्न की तीव्रता पर उसे स्वयं आश्चर्य हुआ। बिना लाग लपेट के बात करना यूँ तो उसकी आदत थी, लेकिन इस तरह के मामलों में वह कभी बात न कर पाती।

'ऐसा पूनम कहती थी।' जैसा प्रश्न वैसा ही गुंजन का भी सीधा-सपाट जवाब। 'तुम उसके साथ रही हो, दिन-रात की साथी हो, क्या तुमने कभी ऐसा महसूस किया?' सुकन्या के मन में स्वयं भी कभी यह बात आई थी। अंबुज और पूनम ऐसे समय एक-दूसरे के करीब रहे, जब अंबुज को शारीरिक और मानसिक दोनों सहारों की आवश्यकता थी। ऐसे समय में पूनम ने उसे जिस तरह से सँभाला उन परिस्थितियों में दोनों की नजदीकियाँ बढ़ना कोई अप्रत्याशित घटना न थी।

गुंजन सोच में पड़ गई, जब से पूनम रामनाथजी के घर से वापस आई थी, तब से अब तक के घटनाक्रम को याद करने का प्रयास किया, लेकिन पूनम की कही बातों के अलावा उसे कुछ भी ऐसा याद न आया, जिससे अंबुज का पक्ष पता चल सके।

'अंबुजजी ने तो कभी उसे कोई फोन नहीं किया, हाँ, आरंभ में उनकी माताजी अवश्य उसे फोन कर बुला लिया करती थीं। इसके अलावा तो कुछ याद नहीं आ रहा।' दिमाग पर जोर डालने के बाद गुंजन इतना ही बता पाई, तो क्या ये पूनम द्वारा बनाई गई कोई कहानी है? और यदि ऐसा है तो अंबुज इस मकड़जाल से बाहर कैसे निकल पाएँगे? उसने अंबुज को फँसाने के लिए न जाने कैसा चक्रव्यूह रचा होगा, लेकिन इससे उसको क्या हासिल होनेवाला है यह सुकन्या की समझ में न आया। एक सीधा-सादा जीवन जीनेवाली सुकन्या षड्यंत्रकारी मन को कैसे समझ पाती।

सुकन्या का संदेह व्यर्थ न था। अगले ही दिन पुलिस के पास कुछ ऐसे प्रमाण पहुँच चुके थे कि अंबुज की गिरफ्तारी टाली न जा सकी।

गिरफ्तारी की खबर जंगल में भड़की दावानल की भाँति पूरे शहर में फैल गई।

पूनम द्वारा दिए गए सबूतों पर शहरभर में जितने मुँह उतनी बातें।

कोई कहता, उन दोनों के अंतरंग संबंधों की सी.डी. है तो कोई कहता दोनों के बीच हुई बातचीत की रिकॉर्डिंग। कुछ लोगों को अभी भी यकीन न आया कि अंबुज जैसा शरीफ इनसान ऐसा कुछ कर सकता है, लेकिन सबूतों की बात सुन वह भी चुप्पी साध लेते।

सुकन्या हैरान-परेशान थी, ऐसा क्या सबूत पेश कर दिया पूनम ने? कितनी सच्चाई है, इस सबूत में? और यदि सबूत में सच्चाई हुई तो?

सुकन्या का मन एक बार फिर डाँवाँडोल हो उठा। कहीं कोई कमजोर क्षण, भावनात्मक कमजोरी या फिर कुछ और?

एक और परिवार, जो अंबुज से पिछले दिनों जुड़ा था, वह था अंजली का परिवार। कुछ ही समय में अंजली अंबुज के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान लेनेवाली थी, क्या होगा इस रिश्ते का भविष्य? जीवन का यह हादसा क्या अंजली से छिपा रह पाएगा? अंबुज जैसा व्यक्तित्व और मीडिया की अति सक्रियता के युग में यह कैसे संभव होता।

❖ चौदह ❖

चाय की चुस्कियों के साथ अंजली ने अखबार पर निगाह डाली ही थी कि उसकी नजरें एक समाचार पर गड़ गईं, एक बार, दो बार, कई बार पढ़ा उसने। नाम भी वही है और विवरण भी उसी से मेल रखता है, तो क्या अंबुज…। नहीं-नहीं वह ऐसा नहीं कर सकता, उसकी तो बहुत प्रशंसा सुनी है अंजली ने, तभी तो उम्र के इस पड़ाव पर विवाह के लिए हामी भरी थी उसने।

एक भाई और बहन में छोटी अंजली अमेरिका में अपने बड़े भाई के साथ रहकर मैनेजमेंट की पढ़ाई कर रही थी, जब एक दर्दनाक हादसे ने माता-पिता दोनों की जिंदगी लील ली। पुश्तैनी हवेलीनुमा घर में तब पिता व चाचा का परिवार अलग-अलग रहता था। घर बँटा तो व्यवसाय भी बँट गया। माता-पिता की मृत्यु के बाद बेटा कुछ दिन के लिए घर आया, लेकिन अमेरिका में स्थित व्यवसाय के सामने उसने पुश्तैनी व्यवसाय को अधिक तरजीह न दी और आवश्यक औपचारिकताएँ संपन्न होने के पश्चात् परदेस वापिस चला गया, जाते समय अंजली को भी व्यवसाय, घर इत्यादि का निस्तारण कर अपने साथ चलने को कहा, लेकिन घर की स्मृतियों से जुड़ी अंजली ऐसा न कर पाई। चाचा भी परोक्षत: चाहते तो यही थे कि भाई की भाँति अंजली भी सबकुछ उन्हें सौंपकर चली जाए, लेकिन अंजली की मनोदशा देख यह सलाह देने की भी हिम्मत न हुई।

धीरे-धीरे व्यापार की बारीकियाँ समझ अंजली ने करोबार अपने हाथ में ले लिया। तब से लेकर आज तक अंजली ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। काम में अपने आप को ऐसा डुबोया कि किसी और बात की याद ही न रही, न कभी किसी की कमी खली, न ही किसी और ने इस ओर ध्यान दिया कि अंजली का विवाह करना है, संयोगवश अंजली के जीवन में भी कोई ऐसा न आया, जिसने उसके मन को छुआ हो।

अपने इस जीवन से वह पूर्णतया संतुष्ट थी, बल्कि व्यस्तता के चलते उसे कभी असंतुष्ट होने का मौका ही न मिला। हाँ, कुछ बड़े-बूढ़े अवश्य गाहे-बगाहे उसके विवाह का राग आलाप लेते, लेकिन अपनी बात को आगे बढ़ाने के लिए कोई रिश्ता भी उनके पास न होता।

बड़ा भाई पहले वर्ष में एक बार आ जाता था, लेकिन धीरे-धीरे उसके आने की आवृत्ति भी कम हुई। अब जब अंजली जीवन के पैंतीस बसंत देख चुकी थी, तभी दूर की एक बुआ ने अंबुज का रिश्ता सुझाया।

चाची ने मुँह पिचकाया।

'एक तो दुहेजू, ऊपर से दो बेटियों का बाप, क्या यही रिश्ता मिला था अंजली के लिए?'

'तो इतने वर्षों से तुमने क्यों नहीं कुछ किया।' बड़ी आई बातें बनाने वाली।' बुआ भी कहाँ पीछे रहनेवाली थी।

लेकिन अंजली को न चाची के कहने से कोई फर्क पड़ता था, न बुआ के। उसका अपना मन माने तो सब ठीक और न माने तो कोई लाख कहता रहे, हाँ, भाई से कभी-कभी वह व्यवसाय संबंधी सलाह अवश्य ले लिया करती।

एक बार उसका मन हुआ बुआ को साफ-साफ न कह दे, फिर न जाने क्या सोचकर भाई को फोन कर डाला।

'अंजली वैसे तो यह तुम्हारा व्यक्तिगत मामला है, लेकिन फिर भी मैं इतना अवश्य कहूँगा कि जीवन में कोई-न-कोई व्यक्ति आपका इतना अपना अवश्य होना चाहिए, जिससे सुख-दु:ख बाँट सको।

'बाँटने को सिर्फ दु:ख ही नहीं होते खुशी भी होती है, जीवन में कुछ अच्छा होता है तो उसे बाँटने से मन और प्रसन्न होता है। अंबुज के बारे में मैंने सुना है, परिवार भी प्रतिष्ठित है और वह स्वयं भी। बाकी तेरी मरजी!'

भाई के इस कथन में उसकी परोक्ष स्वीकृति अंजली को प्रत्यक्ष दिखाई दी। वह गलत भी नहीं कह रहा था। माता-पिता के जाने के बाद उसने अपने आपको व्यवसाय में झोंक दिया, उत्तरोत्तर सफलता की मंजिलें चढ़ती गई, लेकिन व्यक्तिगत जीवन पीछे छूटता गया।

व्यवसाय में सफलता पर शुभकामनाएँ भी मिलतीं और समारोहपूर्वक सफलता को मनाया भी जाता, लेकिन सबकुछ जैसे मशीनीकरण हो गया हो, रॉकेट की भाँति भावना रहित चेहरे ऐसा लगता जैसे उस दिन उन्हें मुसकराने का कमांड दिया गया हो। चापलूसी की हदें ऐसी कि वह स्वयं ही शर्म से पानी-पानी हो जाए। उसे तलाश होती ऐसे चेहरे की जिसके चेहरे पर वास्तविक मुसकान हो, तलाश होती ऐसे इनसान की, जो उसकी सफलता के साथ-साथ विफलता के दोषों को भी बता सके; लेकिन अपने चारों ओर उसने स्वयं ही ऐसा आवरण बना लिया था, जो किसी मजबूत किले के समान हमेशा इस अभेद्य किले के द्वार केवल अंबुज के लिए ही खुले थे।

लेकिन अब यह समाचार! अंबुज गिरफ्तार हो चुका है, पुलिस के पास सबूत पेश किए गए हैं, तो क्या उसका निर्णय गलत था। कर्म पर यकीन रखने वाली अंजली को भाग्य पर अधिक विश्वास न था, लेकिन इस घटना से मन में कहीं से बात आ ही गई कि शायद उसके भाग्य में जीवनसाथी का योग ही नहीं।

'क्या एक ही इनसान के कई चेहरे हो सकते हैं?' अंजली ने स्वयं से प्रश्न पूछा।

लगता तो ऐसा ही है, अन्यथा शहर भर में समाजसेवी का डंका पीटने वाले का एक पक्ष इतना काला भी हो सकता है क्या?

दो दिन बीत गए, अंजली ने इस संबंध में किसी से बात न की, लेकिन अंजली के हितैषी बनने के प्रयास में चाची बात करने से न चूकी। आई तो हितैषी बनकर, लेकिन इशारों-इशारों में मुँह से निकले व्यंग्य-बाण अंजली का कलेजा बीधने के लिए काफी थे।

'दो-दो बेटियों का बाप, ऐसा करते शर्म न आई उसे। मैं तो पहले ही कहती थी…।'

'अभी कुछ साबित नहीं हुआ है चाचीजी।' अंजली ने उन्हें बीच में ही रोक दिया।

'तूने अखबार ढंग से नहीं पढ़ा शायद। पुलिस को प्रमाण दिए गए हैं, सारे सबूत उसके खिलाफ हैं। अब और क्या देखना-सुनना बाकी रह गया है?'

'जब तक जुर्म साबित न हो तब तक कुछ नहीं कह सकते। हो सकता है प्रमाण झूठे हों।' अंजली ने कहने को तो कह दिया, लेकिन अपनी आवाज का कंपन उसने स्पष्ट महसूस किया।

चाची तो मुँह बिचकाती चली गई, लेकिन अंजली को छोड़ गई विचारों के भँवर में डूबने-उतारने के लिए।

भारतीय संस्कृति में जिसे विवाह योग्य उम्र कहते हैं, उसके गुजर जाने के वर्षों बाद अचानक ही आकाश से गिरे तारे की भाँति यह रिश्ता उसकी गोद में आ गिरा था। आरंभिक हिचक के बाद उसने इसे मन से स्वीकार किया। अंबुज से मिलने पर उसे वह अपने मानसिक स्तर का इनसान लगा। पहली पत्नी की मृत्यु और कुछ समय की शारीरिक अक्षमता ने उसे तोड़ अवश्य दिया था, लेकिन गिरकर उठने की क्षमता थी उसमें।

'क्या विवाह करना इतना आवश्यक है?' मन में एक बार फिर सवाल उठा। और मन में इस रिश्ते के आने के बाद हाँ कहने के जो कारण बने थे, वही इस सवाल का जवाब बने।

'लेकिन जिस रिश्ते की शुरुआत ही ऐसे हो रही हो, उसका भविष्य कैसा होगा? हो सकता है अंबुज पर लगे आरोप सत्य हों और उसे सजा

हो जाए तब क्या करेगी वह?' मन में फिर सवाल उठा फिर भाई से बात की।

'हो सकता है यह झूठ भी हो और हो सकता है सच भी, लेकिन क्या जीवन में परेशानियों की कमी है जो विवादित व्यक्ति से विवाह कर एक और तनाव को न्योता दिया जाए?' उसका सीधा सा सवाल था।

और अंत में फिर वही रटा-रटाया वाक्य।

'यह तेरा जीवन है, जैसा ठीक समझो करो।' ठीक कह रहा है वह, आपाधापी भरी इस जिंदगी में परेशानियों की कमी है क्या, जो एक और चिंता को न्योता लिया जाए।

अभी यदि अंबुज जमानत पर किसी तरह छूट भी गया तो क्या गारंटी है कि वर्षों चलनेवाली न्याय प्रक्रिया के बाद वह बेदाग छूट जाएगा।

क्या वह जीवन का हर पल इस दुश्चिंता में जिएगी कि कहीं उसके जीवनसाथी को सजा न हो जाए? कौन सा जीवन बेहतर है?

लेकिन यदि ऐसा कुछ विवाह के बाद होता तो? मन में एक और प्रश्न उठा।

वह एक अलग बात थी, परेशानियाँ अप्रत्याशित रूप से जीवन में आती-जाती रहती हैं, लेकिन देखकर वह गलती नहीं निगली जा सकती।

मन में चलते ढेरों प्रश्न-उत्तरों, तर्क-वितर्कों के पश्चात् अंजली निर्णय ले चुकी थी।

चार दिन बीत चुके थे, अंबुज की जमानत की अरजी एक बार खारिज हो चुकी थी और अंजली अपने निर्णय की सूचना अंबुज के घर भेजने के लिए उचित व्यक्ति की तलाश में थी।

शाम का धुँधलका गहराने लगा था। सूरज अपनी समस्त आभा को समेटे अस्तांचल में डूब रहा था, लेकिन रामनाथजी का भव्य आवास में तो चौबीसों घंटे अँधियारे का साम्राज्य पसरा था। जेल की कोठरी में बंद अंबुज की याद आते ही घर में रोशनी करने का मन न करता।

अंबुज को जेल गए चार दिन हो चुके थे। उसकी जमानत की अरजी

खारिज हो चुकी थी। कोर्ट ने सबूत के तौर पर मोबाइल पर की गई कुछ रिकॉर्डिंग पेश की गई, उसमें क्या था यह अंबुज के परिवार को पता न चल सका।

शाम को नरेशजी स्वयं उपस्थित थे। मोबाइल पर लिये गए कुछ फोटो और वीडियो हैं। लगते तो असली ही हैं, लेकिन मैंने उनकी फॉरेंसिक जाँच के लिए आवेदन कर दिया है। जब तक उसकी रिपोर्ट आती है, मुझे अंबुज की मेडिकल रिपोर्ट के आधार पर जमानत माँगनी होगी।

'कुछ भी करो नरेश, उसे बाहर निकालो। यहाँ तो ये चार दिन चार सदी के समान लगे हैं।'

'दरअसल इस तरह के मामलों में कानून बहुत सख्त है। महिलाओं के प्रति अपराध रोकने की कवायद है यह।'

'क्या अंबुज ने सचमुच कोई अपराध किया है?' रामनाथजी के मन में सवाल उठा। अपने बच्चों को माता-पिता से अधिक कौन जानता है। बचपन में समाज के प्रति उसके रूझान को देखते हुए ही पढ़ाई के लिए उसे अमेरिका भेज दिया था। वहाँ से लौटकर भी उसकी सोच बदली न थी। तब से अब तक उसने अपने कृत्यों से माता-पिता का मस्तक गर्व से ऊँचा ही किया था, लेकिन अब यह क्या हो गया? आरोप भी इतना घिनौना कि चर्चा तक न की जा सके। बेटे से मिलने जेल तक भी गए और सुनवाई वाले दिन न्यायालय भी, लेकिन ऐसा लगता जैसे हर किसी की निगाहें उनकी ही ओर हैं। दो लोग आपस में बात कर रहे हैं तो लगता उन्हीं के बारे में बात हो रही है। कई शुभचिंतकों के फोन भी आए, लेकिन रामनाथजी को स्वर में व्यंग्य ही अधिक लगा। अंबुज की कड़ी मेहनत ने हर क्षेत्र में प्रतिद्वंद्वियों को कहीं पीछे छोड़ दिया था, आज वही प्रतिद्वंद्वी सिर उठाए उनकी बराबरी का तमाशा देख रहे थे।

सुकन्या अजब सी दुविधा में थी, क्या कर सकती है वह इस परिवार के लिए। इस दु:ख की घड़ी में इन चार दिनों में बड़ी मुश्किल से सबके गले में निवाला उतरा था। दोनों बच्चियाँ समझ नहीं पा रही थीं, आखिर

हुआ क्या है? सुकन्या उन्हें अपने पास रख किसी तरह बहलाने की कोशिश करती। किसी के कुछ कहने से बच्चे के बालमन पर कोई दुष्प्रभाव न पड़े, इसलिए चार दिनों से उन्हें स्कूल भी नहीं भेजा गया था।

'आंटी दादी इतना रोती क्यों हैं? पापा कहाँ गए? हम लोग स्कूल क्यों नहीं जा रहे?' एक साथ कई प्रश्न पूछ लिये नन्ही तृष्णा ने सुकन्या से।

'बेटा दादी की तबीयत खराब है, उन्हें दर्द होता है इसलिए आँसू निकल आते हैं और पापा काम से बाहर गए हैं, जल्दी लौट आएँगे।' सुकन्या ने उसे बहलाया।

सुकन्या ने कह तो दिया, लेकिन अपने ही शब्द उसे किसी गहरी खाई से आते प्रतीत हुए। 'कहीं ऐसा न हुआ तो? कहीं अंबुज पर लगे आरोप सही साबित हुए तो?' दोनों बच्चों की ओर देख उसका मन काँप उठा, कल यही बच्चियाँ बड़ी होकर तरह-तरह के सवाल पूछेंगी, बाहर निकलेंगी तो लोगों के ताने इन्हें जीने न देंगे। सुकन्या को लगा जैसे यह सब उसके सामने हो रहा है। घबराकर उसने दोनों बाँहे फैला दोनों बच्चों को अपने आगोश में ले लिया।

पूनम से मिलना चाहती थी वह, पूछना चाहती थी कि आखिर एक भरे-पूरे परिवार को उजाड़कर क्या मिल जाएगा उसे? लेकिन पूनम तो अपने घर ही वापस न आ रही थी, कुछ कारोबारी संगठनों ने उसे अपने पास रखा हुआ था। अंबुज के परिवार से तथाकथित तौर पर खतरा था उसे। शायद उन्हें यह भी खतरा होगा कि पूनम कहीं बाद में अपने बयान से न मुकर जाए और अंबुज के विरुद्ध मिला मौका हाथ से चला जाए।

सुकन्या रात को घर का सारा काम निबटाकर कमरे में चली गई, सोने के मन से तो बिस्तर पर लेटी..., लेकिन परेशान मन ने उसे अशांत कर दिया।

मैं कैसे चैन से सो सकती हूँ? जिस घर ने मुझे जीने की उम्मीद बँधाई, आज उसी घर के सदस्यों का जीवन घोर निराशा में घिरा है। क्या

बीत रही होगी इन पर? पहले दीदी की अनायास मौत, अंबुजजी शारीरिक और मानसिक रूप से घायल, अब जब सब थोड़ा सामान्य होता जा रहा था तो उस पर यह आफत…।

हे ईश्वर, क्यों करता है तू ऐसा, जो रास्ते के काँटों को साफ करते हुए चलते हैं, तू क्यों उन्हीं के पैरों पर काँटे चुभोता है? अंबुजजी ने समाज में कुंठित, तिरस्कृत, प्रताड़ित और जीवन जीने की आस छोड़ चुके लोगों को जीना सिखाया, उन्हें नया जीवन दान दिया, जिंदगी के मायने सिखाए, उन्हें उद्देश्य दिए, ताकि वे अपने जीवन को अर्थहीन ना समझें…।

और आज, आज उनके साथ यह क्या हो रहा है…'जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे', लेकिन अंबुजजी ने तो ऐसा कुछ भी नहीं बोया था कि जिससे उनके जीवन में इस प्रकार के दु:ख के काँटों की फसल हो गई और उनके जीवन को छलनी-छलनी कर दिया।

हर एक जरूरतमंद के जीवन को खुशहाल बनानेवाले का जीवन आज इतना दु:ख भरा क्यों है?

इस परिवार पर उन हजारों लोगों को दुआएँ क्यों नहीं लगीं…?

न जाने कितने ऐसे ही प्रश्नों को स्वयं से या फिर ईश्वर से पूछती रही सुकन्या।

ऐसे समय में वह क्या कर सकती है कि जो इस घर के हालात थोड़ा सामान्य हो जाएँ…।

विचारों के समंदर में गोते लगाते-लगाते आखिर मन की गति पूनम पर आकर रुक गई।

पूनम…हाँ पूनम से ही मिलना होगा। क्या पता समझा-बुझाकर मान जाए। या ऐसा कुछ बताए, जिससे वह यह केस वापस ले ले…।

यह सोचते-सोचते कब उसकी आँख लग गई, उसे खुद ही नहीं पता, अगली सुबह बाजार जाने के बहाने से वह पूनम के हॉस्टल चल दी अपने सवालों के जवाब के लिए।

❖ पंद्रह ❖

रविवार था तो गुंजन कमरे पर ही मिल गई। आओ सुकन्या…। दरवाजा खोलकर अंदर आने का इशारा कर गुंजन बोली।

'कैसी हो गुंजन?' सुकन्या ने पूछा।

'मैं ठीक हूँ, तुम सुनाओ सब ठीक है घर पर?' अपना जवाब देकर सुकन्या से पूछा गुंजन ने।

'कोई ठीक नहीं है गुंजन। पूनम कहाँ है?' सुकन्या ने पूछा।

'पता नहीं कहाँ है वह, उस दिन से हॉस्टल नहीं आई वह और न ही मुझसे कोई संपर्क किया, लेकिन सुकन्या! उसने जो कुछ भी किया बहुत गलत किया। एक ऐसे इनसान के साथ उसने ऐसी साजिश रची है, जिसने उसे सहारा दिया…पढ़ाया…नौकरी दिलाई और इन सबसे बढ़कर उसे अपनापन दिया। जिस थाली में खाया उसी में छेद कैसे कर दिया उसने?' गुंजन ने भारी मन से सुकन्या से कहा।

'यही बात रह-रहकर मुझे भी परेशान कर रही है गुंजन…कि कोई अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु इतना नीचे कैसे गिर सकता है।'

'गुंजन तुमसे तो वह अपनी हर बात साझा करती होगी। क्या-क्या कहती थी वह अंबुजजी के बारे में।'

सुकन्या ने बातें उजागर होने के उद्देश्य से गुंजन से कहा।

'हाँ सुकन्या! कहती तो वह रोज थी, हर दिन बस अंबुजजी एवं

उनके घर की ही बातें किया करती थी। उसके अनुसार तो अंबुज भी उससे प्रेम करते थे। वह कहती थी कि अंबुजजी भी पूनम के सिवाय किसी और से बात करना पसंद नहीं करते थे और शायद उसे तुम्हारा उनके साथ होना भी पसंद न था। उसे हर हाल में उस घर को प्राप्त करने की इच्छा थी।'

गुंजन कहती जा रही थी और सुकन्या उसके एक-एक शब्द पर अमल किए जा रही थी।

गुंजन की बात सुनने के बाद सुकन्या ने गुंजन से पूछा…।

'गुंजन, मैं तुमसे कुछ माँगना चाहती हूँ, तुम दोगी?'

'मुझसे? मैं क्या दे सकती हूँ सुकन्या?'

'अपना साथ गुंजन।' सुकन्या ने खड़े होकर गुंजन के कंधे को पकड़कर कहा, 'मैं समझाती हूँ' सुकन्या अपनी बात रखते हुए बोली।

'देखो गुंजन, अगर तुम चाहो तो हम दोनों मिलकर अंबुजजी को इस दु:ख की घड़ी से ऊबार सकते हैं।'

'कैसे सुकन्या?' गुंजन ने फिर प्रश्न किया।

'पहले वादा करो कि तुम मेरा साथ दोगी।' सुकन्या ने हाथ आगे बढ़ाया।

गुंजन ने उसके हाथ को मजबूती से पकड़ते हुए कहा, 'देखो सुकन्या' …मैं पूनम की सबसे अच्छी दोस्त थी, और दोस्ती के हर फर्ज को निभाया है मैंने। उसको बहुत समझाया कि जिसने उसे दुबारा जिंदगी दी उसकी जिंदगी से यूँ खिलवाड़ मत कर, लेकिन वह नहीं मानी; हालाँकि मैं अंबुजजी को प्रत्यक्ष रूप से उतना नहीं जानती और न ही अंबुजजी मुझे, लेकिन उनके कार्यों की सराहना जब पूरे समाज में होती है, तो स्वत: ही उनके प्रति आदरभाव मन में आता है। अंबुजजी एक आदर्श इनसान हैं सुकन्या, मैंने अपनी दोस्ती को ईमानदारी से निभाकर दोस्ती का फर्ज अदा किया, लेकिन अब इन सबसे ऊपर उठकर इनसानियत के फर्ज को पूरा करूँगी…।'

'धन्यवाद गुंजन! तुम नहीं जानतीं, आज तुमसे मिलकर मेरा हौसला कितना बढ़ गया। कुछ आशा और कुछ निराशा के मिश्रित भाव से मैं घर से निकली थी, लेकिन तुमने डर को कहीं दूर करके आशा की रोशनी की चमक और बढ़ा दी।'

सुकन्या उत्साहित होकर बोली, 'इसमें धन्यवाद कैसा सुकन्या। यह तो हमारा फर्ज है कि हम ऐसे व्यक्ति की मदद करें, जिसने समाज में अच्छाइयों को जन्म दिया हो।

'अच्छा गुंजन बताओ, पूनम की कुछ ऐसी आदतें थीं, जो तुम्हें कुछ अलग सी लगती हों?' सुकन्या ने पूछा।

कुछ खास तो नहीं···लेकिन हाँ उसकी एक आदत, जिसे वह किसी भी हालत में नहीं छोड़ती थी···वह थी डायरी लिखना।

इस बात को सुकन्या भी जानती थी। इसलिए उसने गुंजन से कहा, 'गुंजन क्या हम उसकी अलमारी में कुछ सबूत ढूँढ़ सकते हैं, गुंजन ने हामी में सिर हिलाया और अलमारी खोली···।'

अलमारी में कुछ कपड़े, नर्सिंग से संबंधित कुछ किताबें और छोटा-मोटा अन्य सामान पड़ा था। सुकन्या ने किताबों को उलट-पलटकर देखा, कहीं कुछ सुराग, कोई कागज का टुकड़ा भर मिल जाए, लेकिन कुछ न मिला। सुकन्या अब निराश हो उठी थी, तभी उसका ध्यान अलमारी के निचले हिस्से में रखे कुछ पुराने कपड़ों की ओर चला गया। कपड़े हटाए तो पीछे तीन-चार डायरियाँ नजर आईं।

'तुम्हें डायरी लिखने की आदत है?'

'हाँ।'

'सब सच लिखती हो?'

'हाँ। मेरी डायरी पर कौन सा कोई उपन्यास छपने वाला है?'

कुछ दिनों पहले हुआ ये वार्त्तालाप सुकन्या को सहसा स्मरण हो आया। आँखों में चमक कौंध गई, साथ ही एक प्रश्न भी।

'कुछ मिलेगा इन डायरियों में?'

डायरियों को हाथ में लिये सुकन्या ने गुंजन से विदा लेनी चाही।

'थैंक्यू गुंजन···थैंक्यू···तुमने मेरी बहुत मदद की···।'

'प्लीज सुकन्या, थैंक्यू मत कहो···मैंने तुमसे साथ देने का वादा किया है, जरूरत पड़ी तो मैं तुम्हारे साथ कोर्ट भी चलूँगी बयान देने, तुम चिंता मत करो, सब ठीक हो जाएगा।'

गुंजन ने सुकन्या को आश्वस्त करते हुए कहा।

आत्मिक संतोष और गुंजन के प्रति कृतज्ञता के भाव लिये सुकन्या घर वापस आ गई।

वापस लौटी तो घर में अजब सा सन्नाटा पसरा था। यूँ तो यह सन्नाटा अब इस घर की आदत बन चुका था, लेकिन आज का यह सन्नाटा कुछ अधिक गहरा प्रतीत हो रहा था।

'अंजली ने रिश्ता तोड़ दिया।' जानकी देवी ने छोटे से वाक्य में कारण स्पष्ट कर दिया।

'क्यों किया अंजलीजी ने ऐसा? कुछ दिन भी प्रतीक्षा न कर पाईं?'

किससे पूछती सुकन्या। बुरे वक्त में ही अपने-पराये की असली पहचान होती है। ऐसा कहा जाता है, लेकिन अंजली ने तो बुरे वक्त का आभास होते ही साथ छोड़ दिया।

ईश्वर का स्मरण कर उसने एक-एक कर डायरियों को देखना आरंभ किया। तीन डायरियाँ अंबुज की दुर्घटना से पहले की थीं, आखिरी डायरी की तिथि देखते ही उसकी आँखों में चमक आ गई।

आरंभ से अंत तक उसने उस डायरी को एक उपन्यास की तरह पढ़ डाला। जैसे-जैसे वह उसे पढ़ती गई आँखों की चमक बढ़ती गई। एक समय तो ऐसा आया कि प्रसन्नता की अधिकता से उसकी आँखें डबडबा आईं, शब्द धुँधले पड़ गए, शीघ्रता से उसने आँसू पोंछ डाले, कहीं डायरी के शब्दों पर गिर उन्हें धुँधला न कर डाले।

समय देखा रात के ग्यारह बज चुके थे, मन हुआ अभी जाकर सबको उठा दे और बता दे जो कुछ भी उसने पढ़ा है, लेकिन दूसरे ही

पल सोचा रात अधिक हो चुकी है। यद्यपि यह भी जानती थी कि उनकी आँखों की नींद पिछले कई दिनों से गायब थी।

उन्हें नींद आई हो या नहीं, लेकिन सुकन्या की आँखों से नींद अब कोसों दूर थी। सुबह होने की प्रतीक्षा में उसने पूनम की बाकी तीनों डायरियों को भी पढ़ डाला। एक अति महत्त्वाकांक्षी लड़की, जो किसी भी कीमत पर सबकुछ हासिल कर लेना चाहती है, की तसवीर सामने थी।

भोर होने की प्रतीक्षा में सुकन्या रातभर सो न पाई। बच्चे आजकल स्कूल नहीं जा रहे थे, इसलिए सुकन्या के पास सुबह कुछ अधिक कार्य करने को न था।

'बेटा, तू बहुत जल्दी उठ गई आज?'

'जी, नींद जल्दी खुल गई।'

'हाँ, आजकल इस घर में नींद आ भी किसको रही है। हमारा सुख, चैन नींद तो सब वह लड़की हर ले गई, जाने किस जन्म की बुराई थी उसमें।' सुबह-सुबह एक बार फिर से अप्रिय प्रसंग छिड़ ही गया।

'मुझे आपसे और बाईजी से बात करनी है, आप वकील साहब को भी बुला सकें तो ठीक रहेगा।'

'बात करनी है, वह भी वकील साहब के सामने। अब यह सुकन्या को क्या हो गया। एक और नई परेशानी खड़ी होने जा रही है क्या?'

'आप घबराइए नहीं, सबकुछ अच्छा ही होगा। मेरे हाथ कुछ लगा है, जिससे अंबुजजी की मदद हो सकती है।' जानकी के चेहरे के भाव ताड़ सुकन्या ने तुरंत कहा।

थोड़ी ही देर में सभी डायरियाँ नरेशजी के समक्ष थीं।

'मुझे याद आया, पूनम को डायरी लिखने का शौक था। कितनी भी व्यस्तता हो 10-15 मिनट वह इस काम के लिए निकाल ही लेती थी। बस, यही सोच उसकी मित्र गुंजन की मदद ली। मैंने स्वयं उसकी डायरी पढ़ी है, झूठ नहीं लिखा है उसने। आप पहले उन दिनों की डायरी देख

लीजिए, जिन दिनों वह यहाँ पर रही थी।'

उन्होंने डायरी के पन्ने पलटे रामनाथजी और जानकी टकटकी लगाए उनकी ओर देख रहे थे, मन में उम्मीद की किरण प्रस्फुटित हो रही थी; लेकिन साथ ही घबराए हुए मन में प्रश्नचिह्न भी था। 'क्या सुकन्या ने सचमुच ऐसा कुछ ढूँढ़ निकाला है?'

'क्या लिखा है इसमें?' रामनाथजी डायरी में लगभग झाँकते हुए से बोले। 'अरे पहले मुझे तो पढ़ने दें तभी तो बता पाऊँगा।' दोस्ती का रिश्ता व्यावसायिक रिश्तों पर सदा हावी रहता।

'बहुत अच्छा काम किया है बेटी तुमने, इस परिवार की लाज रख ली।' और फिर रामनाथजी की ओर देखकर बोले।

'ये डायरी मैं घर ले जाता हूँ, इत्मीनान से सारे दिन बैठकर पढ़ूँगा। उम्मीद है सब अच्छा ही होगा।' डायरियाँ उठाते हुए नरेशजी चारों ओर से हतोत्साहित माता-पिता में आशा की ज्योति जगा गए।

जानकी ने सुकन्या की ओर निगाह डाली, कुछ कहना चाहा, लेकिन जुबान ने साथ न दिया। भावावेश में उन्होंने सुकन्या के दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिये। स्पर्श की भाषा शब्दों से कहीं अधिक शक्तिशाली साबित हुई। सुकन्या सब समझ गई।

❖ सोलह ❖

पूरा कक्ष खचाखच भरा था। आखिर शहर के सर्वाधिक चर्चित मुकदमे की सुनवाई जो थी आज। मधुमक्खियों के भिनभिनाने जैसा शोर पूरे कक्ष में फैला था, जमानत रद्द होने संबंधी न्यायालय के फैसले से अधिकांश लोगों को अदालत का फैसला पूनम के पक्ष में होने की उम्मीद थी।

फिर भी अंबुज के कई शुभचिंतक चमत्कार की प्रतीक्षा में थे, इतने वर्षों से इस परिवार के बारे में सदा अच्छा ही सुना था और अंबुज, उसे तो कई परिवार देवता के समान पूजते।

एन.जी.ओ. की एक कार्यकर्ता के साथ पूनम सबसे आगे वाली पंक्ति में बैठी थी। चेहरा दर्प की भावना से चूर नजर आता। मानो कह रहा हो, देख लिया एक नारी का रूप। अबला कहलाने के बाद भी वह कितनी ताकतवर है।

न्यायाधीश के प्रवेश करते ही कक्ष में सन्नाटा छा गया। बॉक्सिंग रिंग में खड़े योद्धाओं की भाँति दोनों पक्षों के वकील आमने-सामने अपनी पूरी तैयारी के साथ खड़े थे। यद्यपि पूनम का वकील अपनी जीत हेतु आश्वस्त था, लेकिन नरेशजी का आत्मविश्वास उसे अंदर-ही-अंदर विचलित कर रहा था।

पूनम के मोबाइल पर खींची गई तसवीरें अहम प्रमाण थीं, जो दोनों के रिश्तों की नजदीकियाँ स्वयं ही बयान कर रही थीं।

एक ओर नरेशजी का कहना था कि अंबुज की अवस्था का लाभ

उठाकर उसे ब्लैकमेल करने के इरादे से ये तसवीरें खींची गई हैं। वहीं पूनम और उसका वकील इस बात पर अडिग थे कि ये तसवीरें दोनों की इच्छा से ली गई हैं और उनके बीच पनपते गहरे रिश्ते का प्रमाण है।

अब नरेशजी की बारी थी। वहाँ उपस्थित रामनाथजी के साथ-साथ अनेक शुभचिंतकों का दिल धड़क उठा। दिल तो पूनम का भी धड़का, लेकिन किसी डर से नहीं अपितु संभावित जीत की पुलक से।

'मीलॉर्ड, मेरे पास कुछ ऐसे सबूत हैं, जिससे इस केस की तसवीर ही बदल जाएगी।' नरेशजी का धीर-गंभीर स्वर अदालत में गूँजा।

पूनम ने ध्यान से देखा, उनके हाथ में एक पैकेट था। 'क्या होगा इस पैकेट में? ऐसा कौन सा सबूत हो सकता है, जो मेरे आरोप को गलत साबित कर दे।'

'ये डायरी…।'

'डायरी! ओह!' स्वाभाविक रूप से पूनम के मुँह से निकले इन शब्दों ने आसपास बैठे लोगों का ध्यान उसकी ओर खींच लिया।'

'कुछ खास है क्या डायरी में?' एन.जी.ओ. संचालिका ने व्यग्र स्वर में प्रश्न किया।

कक्ष में एक बार फिर मधुमक्खियों की सी भिनभिनाहट फैल गई। इसे रोकने के लिए जज ने ऑर्डर-ऑर्डर की ध्वनि के साथ हथौड़ा मेज पर बजाया। पूनम कुछ कह पाती, इससे पूर्व ही कमरे में खामोशी छा गई।

कमरे में सिर्फ नरेशजी की आवाज गूँज रही थी, लेकिन पूनम के मन में तो जैसे ज्वार उठ रहा था। एक बार फिर वह हार रही थी। क्यों इतनी बेपरवाह हो गई वह? जानती है, उस डायरी में लिखा एक-एक शब्द सही है। मन से निकला हुआ ये शब्द अब उसकी आँखों के आगे नाचने लगे। शब्दों को उसने वाक्यों में लिखने की कोशिश की, लेकिन वे उसे छोड़कर अंबुज की ओर भागते रहे।

'कितना बड़ा घर है यह, बिलकुल महल जैसा। ऐसे ही महल में राजकुमार रहते होंगे और ऐसे ही महल का ख्वाब मेरी दादी ने मेरे लिए देखा होगा।'

ये उसने तब लिखा था जब वह पहली बार घर के अंदर तक आई थी।

'आज अंबुजजी बहुत बेचैन रहे, बुखार की अधिकता से बेहोशी में उन्होंने कई बार वर्षाजी का नाम लिया। कितनी किस्मत वाली थीं वर्षाजी, जो उन्हें ऐसा प्यार करनेवाला पति मिला। भौतिक और मानसिक दोनों सुख प्राप्त थे उन्हें।'

'कुछ समय बाद वर्षा, जो कि अब सारे सुख-दु:खों से पार पा चुकी थी, से ईर्ष्या होने लगी थी उसे।

'नींद, बेहोशी में अंबुज आज देर तक मेरा हाथ अपने हाथों में लिये रहे, वे कुछ बुदबुदा रहे थे, लेकिन बहुत प्रयत्न करने पर भी मेरी समझ में न आया। एक नर्स की भाँति कई बार हम दोनों ने एक-दूसरे को स्पर्श किया है, लेकिन यह अनुभव अद्‍भुत था।'

पूनम ने अंबुज के नाम के आगे 'जी' लगाना छोड़ दिया था।

उसे वह दिन याद आया जब अम्माजी वर्षा के जाने से व अंबुज की हालत देख बहुत व्यथित थीं। उसी शाम उसने अपने मन की बातों को डायरी में लिख डाला था।

'अम्माजी के मन के किसी कोने में यह पीड़ा है कि अंबुज अपना शेष जीवन किस तरह व्यतीत करेंगे। इशारों-ही-इशारों में ऐसा लगता है कि वह अंबुज का दूसरा ब्याह करवाना चाहती हैं। क्या मैं यह स्थान नहीं ले सकती हूँ?' और मन में यह विचार आने के बाद ही उसने इसे मूर्तरूप देने का प्रयत्न करना आरंभ कर दिया था।

'अनजाने में ही सही, आज मैंने हम दोनों की एक तसवीर अपने मोबाइल पर ले ही ली, ऐसा लग रहा है जैसे दो प्रेमी प्रगाढ़रूप से आलिंगनबद्ध हों। काश! ऐसा अंबुज के होशोहवास में भी संभव हो पाता।'

पूनम को याद है इस चित्र को खींचते हुए उसके मन में कोई दुर्भावना न थी, न ही इसके दुरुपयोग का विचार मन के किसी क्षुद्र कोने में भी प्रस्फुटित हुआ था। बस, यह तो अंबुज के प्रति मन में उसने एकतरफा

स्नेह की प्रतिक्रिया मात्र थी।

लेकिन धीरे-धीरे इसी प्यार ने ईर्ष्या का रूप ले लिया। अंबुज के निकट रहनेवाले हर व्यक्ति से उसे ईर्ष्या होती, उस घर के वैभव में हिस्सेदारी रखने वाले इनसान उसकी जलन का पात्र बनते, अंबुज के बच्चों को देख उसे अपना बचपन याद आता। और अंबुज को प्राप्त करना अब उसका जुनून बन गया और इसी मन:स्थिति की ओर उसकी डायरी का हर शब्द इंगित कर रहा था।

'वर्षा के वार्षिक श्राद्ध के बाद अम्मा, अंबुज के लिए उचित रिश्ते की तलाश में हैं। अंबुज मेरे अलावा किसी और का नहीं हो सकता, इस ऐश्वर्य, इस वैभव पर मेरा हक है, सिर्फ मेरा, ऐसा ही महल होगा मेरे रहने के लिए और मेरे सपनों का राजकुमार है अंबुज।'

और इसी सनक में उसने न जाने कब और कितनी तसवीरें मोबाइल को जहाँ-तहाँ रख खींच डाली और अब वही तसवीरें अंबुज के विरुद्ध अहम सबूत के रूप में पेश की गई थीं।

और ऐसी ही न जाने कितनी बातें उसकी डायरी में लिखी थीं, जिससे यह स्पष्ट साबित होता कि पूनम अपने इस इकतरफा जुनून को प्राप्त करने के लिए किसी भी हद तक जा सकती है।

बगल में बैठी महिला ने उसका कंधा पकड़ झकझोरा तो आँखों के आगे नाचते शब्द अचानक ही कक्ष में कहीं गायब हो गए। नरेशजी ने उसे कटघरे में बुलाने की अनुमति चाही थी।

पूनम के पैरों में तो जैसे जान ही बाकी न थी, अंबुज पर इतना बड़ा आरोप लगाने की हिम्मत करनेवाली पूनम का दर्प चूर-चूर होकर बिखर गया, और साथ ही बिखर गया उन तथाकथित नारीवादी संगठनों का सपना, जो अंबुज की बेदाग छवि को दागदार करना चाहते थे।

कोर्ट ने सब जानने के बाद अपना फैसला अंबुज के हक में सुनाया और धोखाधड़ी और झूठे आरोपों को लगाने का केस दर्ज कर दिया।

एक भीषण तूफान आया और चला गया। प्रत्यक्ष रूप से तो इस तूफान

ने कोई तबाही नहीं मचाई, लेकिन अंबुज के मन पर इस विभीषिका का प्रभाव कुछ अधिक ही पड़ा था।

पहले से ही अंतर्मुखी स्वभाव के अंबुज ने खामोशी का एक लबादा सा ओढ़ लिया, जानकी और रामनाथजी को लगता पुत्र को सकुशल वापस लाकर भी जैसे खो दिया है। अंबुज ने अपने आपको कैद कर लिया था एक कमरे में। सारी बातें जानकर अंजली के भाई ने फोन कर क्षमा माँगी और दोबारा रिश्ता जोड़ने की बात कही, लेकिन न तो इस रिश्ते के लिए अब अंबुज राजी था, न ही जानकी।

'तब तो एक बार भी हमारी बात न सुनी, बस एक तरफा फैसला सुना दिया रिश्ता तोड़ने का। अब जब सब ठीक हो गया है तब फिर अपनी तरफ से रिश्ता जोड़ने की बात कर रहे हैं।' अनचाहे ही जानकी का स्वर उन लोगों के लिए कटु हो आया था।

और इन्हीं सबके बीच में थी सुकन्या! यूँ तो उसके स्वभाव और कर्तव्यनिष्ठा के चलते वह घर में सभी लोगों की प्रिय थी, लेकिन इस बार जो उसने किया वह अभूतपूर्व था। एक हारी हुई बाजी, जिसमें घर-परिवार, प्रतिष्ठा सभी कुछ दाँव पर लगा था, उस बाजी की जीत का कारण थी वह। रामनाथजी के प्रतिष्ठित परिवार के लिए धन की हानि इतनी बड़ी बात न थी, जितनी प्रतिष्ठा की हानि। जानकी ने तो हाथ जोड़ दिए थे उसके सामने। सुकन्या ने आगे बढ़ उनके जुड़े हाथ अपने हाथों में ले लिये।

'माँ समान हैं आप मेरे लिए, शर्मिंदा न कीजिए मुझे।'

'साक्षात! देवी का रूप धरकर आई हो तुम इस परिवार के लिए,' और उन्होंने सुकन्या को गले से लगा लिया।

रामनाथजी ने बिना कुछ कहे उसके सिर पर हाथ रख दिया, आँखों में कृतज्ञता के भाव स्पष्ट दिख रहे थे।

❖ सत्रह ❖

सुकन्या प्रसन्न थी, मन-ही-मन संतुष्ट भी। जो कुछ इस परिवार ने उसके लिए किया था, उसकी कई जन्मों में भी कोई कीमत तो अदा न की जा सकती, लेकिन इतने बड़े संकट से परिवार को बचाने में उसकी भी भूमिका रही, यही कारण उसके लिए पर्याप्त था। गुंजन का धन्यवाद करना भी वह न भूली थी।

पूनम पर भी क्रोध आता। एक जीता-जागता हाड़ मांस का इनसान, जिसके अंदर ईश्वर ने दिल नाम का अंग भी दिया है, इतना कृतघ्न हो सकता है?

पूनम के चाचा-चाची भी आए थे। चाची को तो पूनम की बुराई करने का एक मौका मिल गया था तो वह अत्यधिक वाचाल हो रही थी, लेकिन नरेन ने उसे चुप करा जानकी के आगे हाथ जोड़ दिए।

'अब तो आपको यकीन आएगा कि हम गलत न थे। पूरे मोहल्ले में पहले ये बदनामी कराई कि चाचा-चाची के अत्याचारों के कारण बिन माँ-बाप की बच्ची ने जहर खा लिया और अब ये नई बदनामी।' नरेन का गला रुँध गया।

'उसके चाचा-चाची होने के नाते माफी माँगते हैं आपसे। वह तो अपने कर्मों की सजा भुगतेगी ही, लेकिन उसके रक्त संबंधी होने के अभिशाप से हम भी मुक्त नहीं हो पा रहे।'

धीरे-धीरे सभी अपनी-अपनी दिनचर्या में लग बीते हुए कल को

भूलने का प्रयास कर रहे थे, अगर कोई इस घटना को न भुला पा रहा था तो वह था अंबुज। पहले वर्षा की मौत और फिर पूनम द्वारा लगाए गए···लांछन ने मन में नासूर सा बना दिया। इस नासूर के लिए अब ऐसे मलहम की आवश्यकता थी, जो इस घाव को भर पाता, और इस घाव को भरने के लिए किसी ऐसे मित्र का आसपास रहना जरूरी था, जिससे अंबुज अपने मन की बात कह पाता।

यूँ तो तृष्णा और तुहिना भी वर्षा को बहुत याद करतीं, लेकिन समय और व्यस्तता उन्हें इतना समय ही न देती। वर्षा की मृत्यु के बाद सुकन्या ने दोनों बच्चों को इतना प्यार दिया कि वे सुकन्या के करीब आते गए।

जानकी के मन में आया, कितनी निःस्वार्थी लड़की है यह। माना कि इस भरी दुनिया में वह निपट अकेली है और अकेली लड़की का बिना किसी संरक्षण के रहना सुरक्षित नहीं, लेकिन यहाँ रहने के बाद वह किसी भी सुयोग्य व्यक्ति को अपना जीवनसाथी बनाकर इस घर की सेवा से मुक्ति पा सकती थी। यहाँ तक कि स्वयं जानकी ने इस संबंध में बात की थी।

'आप मुझे यहाँ से क्यों बाहर करना चाहती हैं?' बड़ी-बड़ी भावपूर्ण आँखों में मोती जैसे दो आँसू रिस गए थे, उसके बाद जानकी ने कभी इस बात का जिक्र न छेड़ा।

बच्चे अभी स्कूल से लौटे थे, खाने की मेज पर भोजन करने की गति उतनी न थी, जितनी कि स्कूल की दिनचर्या सुनाने की।

'दीदी, तुम चुप रहो। आंटी पहले मेरी बात सुनेंगी,' तुहिना को जल्दी-जल्दी अपनी बात कहते देख तृष्णा मायूस हो गई।

तृष्णा थी ही ऐसी बहुत शांत, बहुत सौम्य, धीरे-धीरे स्निग्ध स्वरों में अपनी बात कहनेवाली। उससे उलट तुहिना हमेशा जल्दी में होती, इतना तेज बोलती कि लगता कुछ शब्द मुँह के अंदर ही छूट गए हैं, और सिर्फ वार्त्तालाप में ही नहीं, अपने अन्य कार्य भी वह शीघ्रता से निपटाती। होमवर्क करना हो, सुबह स्कूल के लिए तैयार होना, तुहिना की फुरती देखने लायक होती।

'हम अभी किसी की बात नहीं सुनेंगे। पहले दोनों भोजन करेंगी फिर थोड़ी देर आराम, उठकर होमवर्क और फिर ढेर सारी बातें और खेलकूद, खाते हुए बात करो तो खाना गले में अटकता है।' अपनी बातों से सुकन्या ने दोनों को चुप करा दिया।

'ठीक है आंटी।' कह दोनों भोजन पर जुट गईं, जानकी ध्यान से बच्चों का क्रियाकलाप देख रही थी।

कितनी घुली-मिली हैं ये दोनों सुकन्या से, वर्षा के जाने के बाद सुकन्या ने उन्हें माँ की कमी महसूस न होने दी, भीषण मानसिक झंझावत में भी उन्हें बाहरी समाचारों से बचाए रखा, ताकि उनके कोमल मन पर विपरीत प्रभाव न पड़े।

अनायास ही जानकी के मन में एक विचार कौंधा, 'क्या ऐसा हो सकता है? सुकन्या मानेगी? और सुकन्या मानी भी तो क्या अंबुज…?'

अचानक ही आए इस विचार को उसने मन के किसी कोने में दबा दिया।

कहते हैं समय सबसे बड़ा मरहम है, धीरे-धीरे गहरे-से-गहरे घाव भी भर देता है। ऐसा ही इस परिवार के साथ भी हो रहा था। पूनम द्वारा दिया गया घाव भी भरने लगा था, इस दुःखद प्रकरण को अंबुज ने भी अब भूलने का ईमानदारी से प्रयास किया।

शनैः-शनैः अंबुज ने बाहर निकलना आरंभ किया, लेकिन अब वह अपने आप को इतना व्यस्त रखना चाहता कि कुछ सोचने का समय ही न मिले, लेकिन माँ की आँखों से कभी कुछ छिपता है क्या? उसकी सूनी निगाहें, मुरझाया चेहरा सभी कुछ बयान कर जाता।

मन के किसी कोने में दबी आग ने हवा पाते ही सुलगना आरंभ किया।

'अंबुज यूँ एकाकी और अभिशप्त जीवन कब तक जिएगा। हम कितने दिन के मेहमान हैं अब। कल तुहिना और तृष्णा अपने में व्यस्त हो जाएँगे, फिर उसके साथ कौन?' उसने रामनाथजी से अपने मन की बात कही।

'अंजली के साथ उसका रिश्ता पूनम के कारण न जुड़ पाया, अब अव्वल तो अंबुज मानेगा नहीं और अगर मान भी गया तो उसे समझने वाली लड़की मिलेगी कहाँ?' रामनाथजी ने शंका व्यक्त की।

'एक लड़की है मेरी नजर में।' और जानकी ने अपने मन की बात कह दी।

रामनाथजी कुछ देर सोचते रहे फिर शांत स्वर में बोले, 'चुनाव तो तुम्हारा बिलकुल ठीक है, लड़की पढ़ी-लिखी भी है और संस्कारी भी। फिर वह अंबुज की परिस्थितियों के बारे में सबकुछ जानती है, लेकिन पहले दोनों के मन की तो जान लो। बात कर लो अंबुज से।'

रात्रि भोजन के उपरांत अंबुज अपने शयन कक्ष में गया ही था कि जानकी ने पीछे से कक्ष में प्रवेश किया।

'तुझसे बात करनी है।' वह पास रखे सोफे पर बैठ गई।

'अंबुज की छठी इंद्रीय जाग उठी, समझ गया, माँ एक ही बात के बारे में बात करना चाहती है,' सोच लिया था मन-ही-मन कि माँ को दो टूक कह देगा कि इस संताप को और नहीं झेल सकता वह, इस बारे में वह कभी उससे बात न करे।

लेकिन उसकी सारी प्लानिंग धरी-की-धरी रह गई। माँ के सीधे सपाट प्रश्न से वह हैरान रह गया। इस बारे में तो उसने कभी सोचा ही नहीं, उससे जवाब देते न बना, दोनों बेटियों का खयाल भी मन में आया। क्या उनके भविष्य के लिए इस प्रश्न का जवाब स्वीकारोक्ति में देना ठीक रहेगा?

लेकिन माँ के मुँह से निकले अगले वाक्य ने इस दुविधा को भी समाप्त कर दिया।

'माँ अपने प्रभाव का इस्तेमाल मत करना, ऐसे संबंध किसी लिहाज में होना ठीक नहीं होता।'

अंबुज की स्वीकारोक्ति जानकी के मन में एक नई आशा संचारित कर गई, उन्हें अब अंबुज के जीवन में एक बार फिर थोड़ी ही सही, पर खुशियाँ आने की उम्मीद थी।

सूर्योदय की प्रतीक्षा में जानकी को रात भर नींद न आई, बार-बार करवट बदलने पर पार्श्व में लेटे रामनाथजी की नींद खराब होती, उतनी बार वह जानकी पर गुस्सा होते, लेकिन जानकी का मन उसके वश में कहाँ था।

भोर हुई, जानकी का तो जैसे समय ही न कट रहा था।

'आज बच्चों को देर से स्कूल जाना है क्या?' उन्होंने सुकन्या से पूछा।

'नहीं माँजी, अपने समय पर ही जाना है।' नाश्ता तैयार करती सुकन्या बोली।

'अच्छा! मुझे लगा…।'

'आप चिंता न कीजिए माँजी, मुझे बच्चों की समय-सारणी का सदा पता होता है। उन्हें देर नहीं होगी।' सुकन्या मुसकराकर बोली।

'हाँ, तभी तो…।' जानकी गूढ़ स्वर में बोली, जिस पर सुकन्या ने अधिक ध्यान न दिया।

'आ, इधर मेरे पास बैठ, तुझसे कुछ बात करनी है,' बच्चों के स्कूल जाते ही जानकी ने सुकन्या को अपने पास बिठा लिया।

'जी, बताइए माँजी।' सुकन्या सामने पड़ी कुरसी पर आकर बैठ गई।

'देख बेटी, ना न कहना, बड़ी उम्मीदों से तेरे पास आई हूँ।' और उन्होंने सुकन्या के दोनों हाथ पकड़ लिये।'

'हाँ-हाँ माँजी बोलिए, आपके लिए तो मेरा जीवन हाजिर है।' सुकन्या ने कहा, लेकिन उसकी समझ में न आया आखिर जानकीजी उससे क्या माँगना चाहती हैं। उस पूरे परिवार का प्रभामंडल सुकन्या के समक्ष इतना प्रभावशाली था कि उनके सामने तो सुकन्या ही याचक की भूमिका में थी।

'मेरी बहू बनेगी बेटी?' और सचमुच ही उन्होंने अपनी साड़ी का पल्लू सुकन्या के समक्ष फैला दिया।

सुकन्या को लगा जैसे उसने कुछ गलत सुन लिया, बचपन में माँ को खोया, फिर पिता को और फिर माँ समान अम्मा को, इतने दुर्भाग्यों

को झेलते हुए उसके जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य अभी तक यही था कि उसे इस घर में ठौर मिल गया था। इससे बड़े सौभाग्य की न उसे कल्पना थी, न चाह।

'बेटी तेरे ऊपर कोई दबाव नहीं, किसी अहसान का बदला चुकाने की नीयत से भी जवाब न देना। तू इतने वर्षों से इस घर में है तो अपने सद्गुणों के कारण, हमारी दया के कारण नहीं।'

अंबुज को सदा उसने इस घर के छोटे मालिक के रूप में जाना। मितभाषी अंबुज ने पहले भी उससे अधिक बात न की थी और न ही अब। वर्षा के रहते हुए तो उसे सुकन्या से बात करने की आवश्यकता भी न पड़ती और न ही सुकन्या की आदत बात करने का मौका ढूँढ़ने की थी।

वर्षा की मृत्यु के पश्चात् बेटियों के संबंध में सुकन्या से कभी-कभार बात होती। पूनम प्रकरण के पश्चात् घर लौटे अंबुज ने बिना कुछ कहे आँखों-ही-आँखों में कृतज्ञता व्यक्त की थी। उन उदास सूनी निगाहों में न जाने क्या था कि वह अंदर तक हिल गई।

लेकिन अब जानकीजी का यह प्रश्न? क्या ईश्वर उसके सौभाग्य को एक नई दिशा दे रहा था? निगाहों में तुहिना और तृष्णा का चेहरा घूम गया, तो अंबुज का भी।

पूनम और सुकन्या का सामाजिक स्तर लगभग एक सा ही था और अंबुज का परिवार उनके समक्ष आकाश में चमकते सूर्य जैसा। हतभागिनी पूनम ने ईर्ष्या और हठवश उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया, वह हाथ जला बैठी। दूसरी ओर सौम्य और संतोषी प्रकृति की सुकन्या के आँचल में यही सूर्य का तप्त गोला चाँद सी शीतलता बिखेरने को आतुर खड़ा था।

इस सौभाग्य को ईश्वर का प्रसाद समझ मन-ही-मन स्वीकार किया सुकन्या ने, और आगे बढ़ जानकी के चरण छू लिये।

□□□